कहीं नहीं लिखा कि शुभङ्कर, माघ का पितृव्य और सिद्धर्षि का पितृव्य-पुत्र था। एतावता माघ का समय नवम शताब्दी के पहले निर्विवाद सिद्ध होता है।*

यहां तक प्रस्तुत कवि के समय-निरूपण के विषय में लिखा गया। अब अन्यान्य बातों पर विचार किया जाता है।

यह कवि गुजरात देश मे उत्पन्न हुआ था। यह उपर्युक्त तीनों प्रबन्धों के सिवा लोकप्रथा से भी जाना जाता है। और यह भी ज्ञात होता है कि यह पूर्वावस्था में पूर्ण वैभवशाली और अद्वितीय विद्वान् था। यहां पर यह प्रश्न हो सकता है कि पहले जिन प्रबन्धों की आधारभूत जनश्रुतियों को विश्वासयोग्य न मानने का उल्लेख हो चुका है, उन्हीं जनश्रुतियों के आधार पर यहां के देशादि सम्बन्ध में क्यों प्रमाण माना जाता है? ठीक है। किन्तु हम यह बात ऊपर भी लिख चुके हैं कि इस प्रकार की जनश्रुतियों को सर्वथा अविश्वनीय भी समझना युक्तियुक्त नहीं है। इन आख्यायिकाओं को सर्वांश में निर्मूल न मानने का कारण यह है कि इनके प्रायः असत्य होने पर भी इनमें सत्यता का कुछ अंश मिला रहता है। क्योंकि कोई बात जब एकबार प्रचलित हो जाती है, तब वह पितृ-पुत्र द्वारा कुछ परिवर्तन होती हुई प्रचलित रहती है। परन्तु प्रारम्भ में वह सर्वथा निर्मूल नहीं होती। ऐसीही आख्यायिकाओं के आधार पर जो कई ग्रन्थकारों ने ग्रन्थ लिखे हैं, उनमें वर्णनीय व्यक्ति के वर्णन के साथ उस जनकथा का सम्वाद भी उन्होंने जोड़ दिया है। "भोजप्रबन्ध"-कार ने तो यहां तक साहस किया है कि जितने प्राचीन कालके प्रसिद्ध प्रसिद्ध विद्वान् हुए हैं, उन सब को भोज के समकालीन लिखकर भोज-द्वारा उनका सम्मानित होना बतलाया है।

इससे, उन ग्रन्थों के वर्णनीय व्यक्तिगत सम्बन्ध को छोड़ कर और सब बातें ग्राह्य हो सकती हैं। ऐसी किम्वदन्तियों को बड़े बड़े ग्रन्थकार और आचार्यों ने भी अपने ग्रन्थों में स्थान दिया है। महर्षि कणाद "वैशेषिक" दर्शन के प्रणेता थे। उनके विषय में यह किम्वदन्ती प्रसिद्ध है कि उन्होंने शंकर को प्रसन्न करके उनके आज्ञानुसार यह वैशेषिक दर्शन बनाया है। इस किम्वदन्ती को उदयनाचार्य ने अपने ग्रन्थ में लिखा है।

माघ ने शिशुपालवध के अन्त में अपना वंश-वर्णन किया है और अपने प्रपितामह का नाम सुप्रभदेव बतलाया है। सुप्रभदेव एक राजा का

---

* लेखक महोदय ने माघ के दूसरे सर्गका जो श्लोक उद्धृत किया उसमें व्याकरण के दो ग्रन्थों का उल्लेख है—एक "काशिकावृत्ति", दूसरा "न्यास"। पहले के कर्ता वामन और जयादित्य नाम के पण्डित हैं। जयादित्य बौद्ध था। चीन देशीय परिव्राजक ईशींग ने लिखा है कि जयादित्य की मृत्यु ६६१–६६२ ई० के बीच में हुई। "न्यास" नामक ग्रन्थ काशिकावृत्ति की टीका है। उसके कर्ता जिनेन्द्रबुद्धि का उल्लेख ईशींग ने नहीं किया। इससे सूचित होता है कि उसके समय में यह पण्डित विद्यमान न था। विद्वानों का अनुमान है कि "न्यास" के कर्ता ने अष्टम शताब्दी के आरम्भ में इस ग्रन्थ को बनाया। अष्टम शताब्दी के "न्यास" का उल्लेख माघ ने अपने ग्रन्थ में किया और नवम शताब्दी के अन्त में होनेवाले आनन्दवर्धन ने माघ के शिशुपालबध के पद्य अपने ग्रन्थ में उद्धृत किये। इससे सिद्ध हुआ कि माघ का काल अष्टम शताब्दी के अन्त या नवम शताब्दी के आरम्भ का है।

माघ के विषय में और कई प्रमाण मिलते हैं। भोजराज-कृत सरस्वतीकण्ठाभरण में शिशुपालवध के नवम सर्ग का छठा श्लोक उद्धृत है। इससे भी सिद्ध है कि माघ भोज के पहले के हैं। सोमदेव ने यशस्तिलक नाम का ग्रन्थ ८८१ शकाब्द में बनाया है। इसमें भी माघ का नाम है। माघ का समय-सम्बन्धी एक और भी प्रमाण है। नृपतुङ्ग नामक राजा ने "कविराजमार्ग" नाम का एक ग्रन्थ बनाया है। इस ग्रन्थ में उसने माघ का नाम लिखा है। यह राजा ८१४ ईसवी में सिंहासन पर बैठा था। उससे सूचित होता है कि माघ उसके समकालीन थे; या कुछ ही दिन पहले परलोकगामी हो गये थे।—सम्पादक।

आश्रित था। प्रभावकचरित में भी इसका उल्लेख है। शिशुपालवध की हस्तलिखित प्रतियों में उस राजा के धर्मनाभ, धर्मनाथ, धर्मलाभ, चर्मलात, धर्मलात, धर्मदेव, वर्मलाख्य, वर्मलात, वर्मनाम, निर्मलान्त—इस प्रकार बहुत से नाम देखे जाते हैं।*

अस्तु अब हम इस विषय को यहीं छोड़ कर उक्त कवि के काव्य के विषय में कुछ निवेदन करना चाहते हैं। माघ ने शिशुपालवध के सिवा दूसरा कोई ग्रन्थ लिखा है या नहीं? यह एक प्रश्न है।

निस्सन्देह शिशुपालवध के अतिरिक्त दूसरा ग्रन्थ इस समय माघ के नाम से नहीं देखा और सुना जाता है। परन्तु विद्वद्वर वल्लभदेव ने सुभाषितावली में नीचे के दो पद्य माघ के नाम से उद्धृत किये हैं।—

शीलं शैलतटात्पतत्वभिजनः संदह्यतां वह्निना
माश्रोषं जगति श्रुतस्य विफलक्लेशस्य नामाप्यहम् ॥
शौर्ये वैरिणि वज्रमाशुनिपतत्वर्थोऽस्तु मे सर्वदा।
येनैकेन विना गुणास्तृणबुसप्रायाः समस्ता अमी ॥ *

नारी नितम्बफलके प्रतिबध्यमाना
हंसीव हेमरसना मधुरं ररास।
तन्मोचनार्थमिव नूपुरराजहंसा-
श्चक्रन्दुरार्तमुखरं चरणावलग्नाः ॥ †

और 'औचित्य-विचार-चर्चा" में महाकवि क्षेमेन्द्र ने भी ऊपर के पद्यों के मेल का सा ही निम्नलिखित पद्य माघ के नाम से उद्धृत किया है—

बुभुक्षितैर्व्याकरणं न भुज्यते;
पिपासितैः काव्यरसो न पीयते।
न विद्यया केनचिदुद्धृतं कुलं;
हिरण्यमेवार्जय निष्फलाः कलाः" ॥ ‡

किन्तु उपर्युक्त ये तीनों पद्य माघ के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ "शिशुपालवध" में उपलब्ध नहीं होते हैं। इस से अनुमान होता है कि कदाचित् कोई और ग्रन्थ भी माघ ने रचा हो। और क्या आश्चर्य है कि कहीं वह छिपा हुआ हो। अथवा हमारे अन्य प्राचीन ग्रन्थों की भांति वह भी यवनादि के प्रसाद से नष्ट हो गया हो।

---

* शिशुपाल वध के अन्त में है—

सर्वाधिकारी सुकृताधिकारः श्रीधर्म्मनाभस्य बभूव राज्ञः।
आसक्तदृष्टिर्विरजाः सदैव देवोऽपरः सुप्रभदेवनामा ॥ १ ॥
तस्याभवद्दत्तक इत्युदात्तः क्षमी मृदुर्धर्म्मपरस्तनूजः।
यं वीक्ष्य वैयासमजातशत्रोर्वचो गुणग्राहि जनैः प्रतीये ॥ २ ॥

श्रीशब्दरम्य कृतसर्गसमाप्तिलक्ष्म
लक्ष्मीपतेश्चरितकीर्तनचारु माघः।
तस्यात्मजः सुकविकीर्त्तिदुराशयादः
काव्यं व्यधत्त शिशुपालवधाभिधानम् ॥ ३ ॥

अर्थात् धर्म्मनाभ राजा का सुप्रभदेवनामक अधिकारी था। सुप्रभदेव का पुत्र दत्तक हुआ और दत्तक का माघ। माघ ने शिशुपाल बध बनाया। जिस राजा के आश्रय में सुप्रभदेव था, उसका ठीक ठीक पता नहीं लगता कि वह कब और कहां हुआ और उसका यथार्थ नाम क्या है। पर बहुत करके यह गुजरात में कहीं का राजा रहा होगा; और माघ भी गुजरातही के थे। यह उनके काव्य से भी सिद्ध होता है। द्वारका, और उसके पास समुद्र तथा रैवतक पर्वत का माघ ने बहुत ही मनोहर वर्णन किया है। उस वर्णन से जान पड़ता है कि माघ ने उनको प्रत्यक्ष देखा था।— सम्पादक।

* भावार्थ—शीलवान् स्वभाव पर्वत से गिरै; अभिजन चाहे अग्नि सें भस्म होजावैं; फलरहित दुःखरूप जगत की बातों का नाम भी मैं न सुनूं; शूरवीरता रूप शत्रु पर शीघ्र वज्रपात हो; किन्तु मुझे सर्वदा द्रव्य प्राप्त हो, जिस एक के बिना ये सब गुण तृणप्राय हैं।

† भावार्थ—कामिनी के नितम्बस्थल पर हंसिनी के समान बँधीहुई सुवर्ण की तागड़ी (कटि-भूषण) के मधुर रोदन शब्द को सुनकर उसको छुड़ाने के लिये मानों नूपुर रूप राजहंस चरणों से लगे हुये आर्त्त शब्द करते हैं।

‡ भावार्थ—भूखों की भूख व्याकरण खाने से नहीं जाती; प्यासों की प्यास काव्यरस के पीने से शांत नहीं होती; और न विद्या से किसी का कुल ही ऊंचा होता है। अतएव सुवर्ण का संग्रह करो; उसके बिना और सब बातें निष्फल हैं।

शिशुपालवध में पाण्डवों के समकालीन राजा शिशुपाल का श्रीकृष्णचन्द्र के द्वारा वध वर्णित है। यह कथा महाभारत के सभापर्व से लीगई है। इसमें ३६ वें अध्याय के प्रारम्भ से ३९वें अध्याय तक "अर्घाभिहरण" पर्व है। और ४०वें अध्याय के प्रारम्भ से ४५वें अध्याय तक "शिशुपालवध" पर्व है। इन दोनों पर्वों में उल्लिखित कथा से शिशुपालवध की रचना की गई है। तथापि महाभारत की कथा की अपेक्षा इसका संविधानक कुछ और ही ढंग से रक्खा गया है। अतएव इसका कथा सूत्र संक्षिप्त रूप से प्रदर्शित करना आवश्यक है। वह इस प्रकार है—देव-ऋषि नारद एकबार श्रीकृष्ण के दर्शनार्थ द्वारका आये। श्रीकृष्णद्वारा उनका उचित सत्कार होने पर नारदजी ने भगवान की स्तुति-पूर्वक इन्द्र का सुयश वर्णन किया। उसमें उपोद्घात रूप से शिशुपाल के पूर्वजन्म, हिरण्यकशिपु, हिरण्याक्ष और रावण-कुम्भकरण का उल्लेख किया। फिर सिंहावतार और रामावतार का स्मरण कराके शिशुपालवध के लिये नारदने प्रार्थना की। तब शार्ङ्गपाणि कृष्ण भगवान ने शिशुपालवध की प्रतिज्ञा की। इतने ही में कृष्णचन्द्र की सेवा में राजसूय यज्ञ करने के लिये उद्युक्त युधिष्ठिर का निमन्त्रण आया। इस पर कृष्ण ने उद्धव और ज्येष्ठ भ्राता बलदेव से सलाह पूछी कि शिशुपाल के मारने का पहले प्रबन्ध किया जाय, या धर्मराज के राजसूय यज्ञ देखने जाने का। तब राजसूय यज्ञ में सम्मिलित होने और वहीं शिशुपाल को मारने की सलाह ठहरी। अतएव द्वारका से श्रीकृष्णचन्द्र का प्रस्थान हुआ। इस सम्बन्ध में द्वारका, समुद्र और रैवतक गिरि आदि का वर्णन किया गया है। रैवतक गिरि पर श्रीकृष्ण के मनोविनोदक षड्ऋतु, वनविहार, जलक्रीड़ा, सायङ्काल, चन्द्रोदय, पानगोष्ठी, रात्रिक्रीड़ा और प्रभात का वर्णन है। तदनन्तर, प्रयाण और यमुना का वर्णन करके श्रीकृष्णचन्द्र का पाण्डवों के साथ समागम, इन्द्रप्रस्थ-प्रवेश, तत्कालिक पुराङ्गनाओं की चेष्टा और महाराजा युधिष्ठिर के सभागृह की विचित्रता का वर्णन है। अनन्तर शिशुपालवध का उपोद्घात रूप राजसूय यज्ञ का प्रस्ताव है। फिर श्रीकृष्ण को अर्घदान की बात, भीष्म-कृत स्तुति, शिशुपाल का क्षोभ, उस पर महामनस्वी भीष्मपितामह की उक्ति, शिशुपाल के मित्र नरपतियों का सेना सुसज्जित करना इत्यादि वर्णन है। अनन्तर शिशुपाल का दूत भेजना और उसका श्रीकृष्ण की सभा में द्व्यर्थ भाषण करना, दूत के प्रति सात्यकि का उत्तर, पुनर्वार दूतद्वारा शिशुपाल का पराक्रम वर्णन, कृष्ण की सभा का क्षोभ, सेनाप्रस्थान, और ससंग्रामभूमि में दोनो दलों में तुमुल युद्ध, और चित्र-युद्ध वर्णन है। अनन्तर कृष्ण और शिशुपाल का अस्त्र-युद्ध कथन करके शिशुपाल का वध वर्णन किया गया है।

इसकी मधुर काव्यरचना बहुत उच्चश्रेणी की की है। उसकी सरस मधुरता का अनुभव केवल उसकी प्रशंसा लिखने मात्र से नहीं हो सकता है। कुछ काल तक उसके पीयूषधाराप्रवाह में प्रवाहित हुए बिना उसका आनन्द नहीं आता।

संस्कृत के सुप्रसिद्ध प्रचीन कवियों के विषय में जिस प्रकार कई लोक-प्रचलित आख्यायिकायें मिलती हैं, उसी प्रकार उनके काव्य-विषय में भी पठित-समाज में एक एक, दो दो, पद्य वा वाक्य प्रचलित हैं। प्रस्तुत कवि के काव्य-विषय में भी इस प्रकार के निम्नोद्धृत पद्य उपलब्ध होते हैं—

"नवसर्गगते माघे नवशब्दो न विद्यते"

अर्थात् माघ के नौ सर्ग पढ़ जाने पर नवीन शब्द नहीं रह जाता है।

वस्तुतः माघ की रचना बड़ी विलक्षण है। इसमें शब्दों का न्यास भी बड़ा विचित्र है। इसीसे इसको काव्यरचना की शैली से युक्त नवीन शब्दों का एक कोष कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। एक श्लोक और भी प्रचलित है। वह इस निबन्ध

के प्रारम्भ में दिया गया है। उस श्लोक में माघ के काव्य को उपमा, अर्थ-गौरव और पद-लालित्य इन तीनों गुणों से युक्त लिखा है। इस लिए वह और काव्यों से उत्कृष्ट हुआ। निस्सन्देह माघ में इन तीनों गुणों का एक साथ होना आश्चर्यकारक है। "शिशुपालवध" के विषय में एक और भी प्राचीन पद्य मिलता है। वह यह है—

तावद्भा भारवेर्भाति यावन्माघस्य नोदयः।
उदिते च पुनर्माघे भारवेर्भा रवेरिव॥ *

इस पद्य में भारविनिर्मित किरातार्जुनीय की अपेक्षा माघ उत्कृष्ट बताया गता है। यह बात तो हम प्रथमही कह चुके हैं कि माघ को रचना एकबारही चित्ताकर्षक और विरल घटना है। किन्तु इस बात के साथ हम कदापि सहमत नहीं हैं कि इसके आगे भारवि का काव्य कुछ वस्तु ही नहीं है। जहां तक हमारा अनुभव है, हम भारवि और माघ इन दोनों के काव्य, सामान्य विचार से, समकक्षा में स्थापित करसकतें हैं। इन दोनों की रचना-प्रणाली देखने से हमारा यह अनुमान भी कदाचित् ठीक समझा जायगा, कि इन दोनो की रचना प्रायः एकही तरह की है। इनकी रचना के काल में भी अधिक अन्तर नहीं बोध होता है।

जिस प्रकार पहले के दो पद्य किसी अनुभवी विद्वान् के कहे हुए जान पड़ते हैं, वैसेही यह पिछला पद्य अनुभवहीन किसी साधारण पण्डित का कहा हुआ ज्ञात होता है।

"तावद्भा भारवेः" इस श्लोक के पूर्वार्ध को तारानाथ तर्कवाचस्पति ने वाचस्पति-कोश में 'माघ' पद के व्याख्यान में उद्भट के नाम से उद्धृत किया है। किन्तु इस पर जर्मनी के विद्वान् क्लाट साहब ने "यह श्लोक किसी भी उद्भट के ग्रन्थ में नहीं मिलता है" इस प्रकार तारानाथ महाशय पर आक्षेप किया है।

कदाचित् कुछ लोग "माघ" पर यह आक्षेप करेंगे कि प्राचीन कवियों की भांति उनको भी शृङ्गार-रस अधिक प्रिय था। यहां तक कि प्रकरणोपयोगी ऋतु, पुष्पोद्यान, जलक्रीड़ा, चन्द्रोदय इत्यादि के वर्णन में जहां शृङ्गार-रस-वर्णन की थोड़ी भी प्रयोजनीयता नहीं थी, कहीं कहीं, माघ ने खूब शृङ्गारात्मक वर्णन किया है। जैसे, प्रथम सर्ग में श्रीकृष्णचन्द्र से इन्द्र का सन्देश कहते हुए रावण द्वारा कैलाश को उठाने का वृत्तान्त नारद के मुख से इस प्रकार वर्णन किया गया है—

समुत्क्षिपन् यः पृथिवीभृतां वरं वरप्रदानस्य चकार शूलिनः।
त्रसत्तुषाराद्रिसुताससंभ्रमस्वयंग्रहाश्लेषसुखेन निष्क्रियम्॥

इस स्थलपर इसी प्रकार की और भी उक्तियां हैं।

शृङ्गार-रस-प्रधान काव्यों में इस प्रकार का वर्णन देखा जाता है। सुतरां उसे अयोग्य भी नहीं कह सकते। किन्तु, इस प्रकरण में, श्रीकृष्ण के भक्त-शिरोमणि देवर्षि नारद के मुख से इस ढंग की उक्ति उनके स्वभाव-विरुद्ध प्रतोत होती है और उद्वेगजनक सी जान पड़ती है। यों तो दोषोंहीं के ढूँढ़ने के लिये प्रयत्न किया जाय तो "काव्य प्रकाश" के सप्तमोल्लास में दिखाये हुये काव्यदोषों से कदाचित् कोई भी काव्य निर्मुक्त न हो सके। वहां तो कविचक्रचूड़ामणि कालिदास की कविता के पद्य भी दूषणयुक्त काव्य के उदाहरणों में दिखलाये गये हैं। तब और काव्यों के विषय में क्या कहा जा सकता है! अस्तु।

लेख बहुत बढ़ गया। इस लिए शिशुपालवध के विशेष विशेष स्थलों के अच्छे अच्छे पद्यों को अनुवाद सहित फिर किसी समय हम लिखेंगे और उनकी समालोचना भी करेंगे।

कन्हैयालाल पोद्दार।

---

* भारवि का प्रकाश तभीतक रहता है जबतक माघ का उदय नहीं होता। जब माघ का उदय हो जाता है तब भारवि का प्रकाश माघ महीने के सूर्य की भाँति कम हो जाता है।

पावसराज।

[१]

पावसराज, तुही है ऐसा जिसका है अधिकार
जिस प्रकार नभ में, भूमण्डल में भी उसी प्रकार।
आच्छादित घन घोर घटा से सभी ओर आकाश,
घनगर्ज्जन जलवर्षण, सुर-धनु, सौदामिनी-प्रकाश॥

[२]

नग्नप्राय धराको धारण किये हरित नव चीर,
नदी झील, सर, कुण्ड आदि में देख विपुलतर नीर।
बात यही सुविदित होती है वर्षा का है साज;
तभी कहा नभ, भू में तेरा है समान ही राज॥

[३]

निज मेघों को देख खींचते सरितापति का जीव,
सरिताओं को देख कृशांगी और सचिन्त अतीव।
करुणामृत-वर्षण से उनको पुनः प्रसन्न बनाय
और प्रपीड़ित कर मेघों को दरसाता है न्याय॥

[४]

दावानल से दग्ध वनों को तृण-पल्लव-सम्पन्न
करके, कृपानिधे, करता है तू मृग-जाति प्रसन्न।
विविध भाँति के फल-फूलों से लता-द्रुमों को लाद
नभचर-निकर, मलिन्द-वृन्दका हरता सकल विषाद॥

[५]

कृषक तथा बनिये हैं तेरी सदा देखते राह;
यदि कुछ देर हुई तो मचती है खलबली अथाह।
ग्राम्य तथा नागर-जन सब का रखता है तू प्राण;
खग-मृग ही नहिं मानुष भी हैं पाते तुझ से त्राण॥

[६]

पर चातक तो केवल तेराही रटता है नाम;
सुधा-सिन्धु भी स्वयं मिलै तो है वह उसे हराम।
प्रखर सूर्य्य से पाता यद्यपि कष्ट करोड़ करोड़,
पीता नहीं तथापि और कुछ तेरा घन-जल छोड़॥

[७]

सच्ची, अविचल भक्ति करै यदि कोई व्यक्ति प्रकाश,
निर्द्दय्यता है तो यदि कोई करै उसे भग्नाश।
अतः हमारी सम्मति है यह, उसको सुन, सज्ञान
अपने उस अनुरक्त भक्त का मत करना अपमान॥

[८]

तुझे देख कर धूलिवेष्टिता, दाहपीड़िता, म्लान,
निरलंकृता प्रकृति होती है अति उत्साह-निधान।
मिलनोत्सव की आशा से ज्यों सजती सब शृंगार
तुझे देख कर विरहिन कोई पति-आगमन विचार॥

[९]

ग्रीष्म ताप से जब जलता है सारा धरणी-धाम,
परित्राण-हित तब यों शोभित होते तव घन श्याम।
प्रलयेच्छासे वामदेव को देख विश्व से वाम,
जन-रक्षार्थ पठाया हो ज्यों सुरपति ने घनश्याम॥

[१०]

वृत्त-खण्ड सतरंगा जिसका इन्द्र-धनुष है नाम,
अर्द्ध-दीप्ति-मण्डल है तेरा, प्रियदर्शन, अभिराम।
तेरी गुण-गरिमा, महिमा भी अखिल एक हो बार,
क्यों कर देख सकैं हम जिनकी आखें हैं सविकार॥

[११]

शासन-समय समाप्त हुए भी स्वेच्छा के अनुसार
शासक ऋतु को गद्दी से तू देता कभी उतार।
पावसराज कुपित मत होना, सच कहते हैं भ्रात,
विगत वर्ष के शिशिर-काल में हुई सिद्ध यह बात॥

[१२]

प्रकृति-नारि को तू भी देता रंग विरंग दुकूल;
तू भी रस सरसाता अथवा देता विरहज शूल।
त्रिविध-पवन फैलाती है यश तेरा भी निर्व्याज;
जानै फिर जग क्यों कहता है मधु-ऋतु को ऋतुराज?

सनातन शर्म्मा शाकलानी।

प्रेमपताका ।

[१]

बतला क्या रखती तू है री
निज आखों में हे प्यारी ?
क्या है अलक-जाल के भीतर,
अरुणाधर में है क्या री ?

[२]

चन्द्रबिम्ब-सम मुख-प्रभा में
है क्या बतला हे आली !
जिसने मोह लिया मेरा मन
क्षण में कर दी बेहाली ॥

[३]

जबसे प्रेम भरी निज चितवन
है तूने मुझ पर डाली ।
तब से चित्त-वृत्ति यह मेरी
हाय होगई मतवाली ॥

[४]

मन्द-हास-युत वह छवि तेरी
नयनों बीच समाई है ।
मन में निशि-वासर तेरी हो
अतिशय चिन्ता छाई है ॥

[५]

चपल दृष्टि, रद-पंक्ति मनोहर
तन-लावण्य-लता तेरी ।
उपमाहीन हो रही जग में
है यह दृढ़ सम्मति मेरी ॥

[६]

सरस-सरोज-वदन-शोभा के
वर्णन में मैं हार गया ।
जिससे कुछ अनुभव होता था
वह चित तू ने चुरा लिया ॥

[७]

केश-पाश अति मृदुल मनोहर
श्याम-जलद-शोभाहारी ।
बरसाती क्यों नहीं प्रेम की
धारा अब अति सुखकारी ॥

[८]

नित्य प्रति विरह-ज्वाला से
ज्वलित अंग मेरा होता ।
बचों प्रिये यदि पावों तेरे
प्रेमामृत का नव सोता ॥

[९]

जबसे तेरे लोचन-शायक
लगे हृदय पर वे मेरे ।
चैन नहीं पड़ती है मुझको
बिना किये दर्शन तेरे ॥

[१०]

बिना विचारे क्यों तूने यह
किया प्रिये मेरा अपराध ?
नहीं जानती क्या होनी है—
प्रेम-रूप-नद-धार अगाध ?

[११]

आशामयी मोह-मदिरा के
प्याले भर भर पीता हूं ।
यही हेतु है जो अब तक मैं
इस दुनिया में जीता हूं ॥

सत्यशरण रतूड़ी ।

कुमुदसुन्दरी ।

[१]

यह है कुमुदसुन्दरी बाला ;
है इसका सब ठाठ निराला ।
घर इसका गुजरात देश है ;
देखो कैसा सुभग वेश है ॥

[२]

चारु-चन्द्रमा-सम मुख-मण्डल ,
भूतल में शोभा-ग्राखण्डल ।
कञ्चन-कर्णफूल पहने है ;
नहीं ग्रैार कोई गहने हैं ॥

[३]

काम-कामिनी की ले छाया ;
जिसे चतुर्मुख ने निर्म्माया ।
भूषण उसकी विडम्बना है ;
महा-ग्रनूपम रूप बना है ॥

[४]

इसके देख केश घुघुराले ;
सुमन-सुवासित सुन्दर काले ।
नाग-नारियां छिप जाती हैं ;
मुँह न सामने दिखलाती हैं ॥

[५]

नयन नील-नीरज-छविहारी ;
श्रुति-पर्य्यन्त-पर्य्यटनकारी ।
इसके भृकुटी-भय का मारा ;
लोप शरासन है बेचारा ॥

[६]

इसके ग्रधर देख जब पाते ;
शुष्क गुलाब फूल होजाते ।
कोमल इसकी देह-लता है ;
मूर्तिमती यह सुन्दरता है ॥

[७]

बाहर सायङ्काल हमेशा ;
फिरती यह पतिसाथ हमेशा ।
कड़े छड़े की चाह नहीं है ;
परदे की परवाह नहीं है ॥

[८]

पढ़ती भी, लिखती भी है यह ।
घर सज्जित रखती भी है यह ।
जब यह सुई हाथ उठाती ;
नये नये कौशल दिखलाती ॥

[९]

घरमें सब को भाती है यह ;
पति का चित्त चुराती है यह ।
सखियों में जब जाती है यह ;
मधु मीठा टपकाती है यह ॥

[१०]

यह शिक्षिता गुर्जरी नारी ;
इसको प्रिय है नीली सारी ।
इसकी छवि लोचन-सुखकारी ;
रविवर्म्मा ने खूब उतारी ॥

एक शिकारी की सच्ची कहानी ।

मैं ग्रमीर नहीं हूं । बहुत कुछ समझदार भी नहीं हूं । पर मैं परले दरजे का मांसाहारी हूं । मैं रोज़ जंगल को जाता हूं ग्रैार एक ग्राध हिरन को मार लाता हूं । यही मेरा रोज़मर्रा का काम है । मेरे घर में रुपये पैसे की कमी नहीं । मुझे कोई फ़िकर भी नहीं । इसी सबब से हर रोज़ मैं शिकार के पीछे पड़ा रहता हूं । मुझे शिकार का बड़ा भारी शौक़

है। यहां तक कि मैं उसके सामने अपने मा, बाप, पुत्र, कलत्र और प्यारे प्राणों को भी कोई चीज़ नहीं समझता हूं। आप लोग मेरे कहने को अगर झूठ समझते हों तो आप एक दिन के शिकार का मेरा वृत्तान्त सुन लीजिये। उस वृत्तान्त को सुन कर मुझे भरोसा है कि आप यह अनुमान कर सकेंगे कि मुझे शिकार ज़्यादा प्यारा है कि अपना प्राण। अच्छा अब उस वृत्तान्त को सुनिये—

मेरे यहां आदमियों की कमी नहीं है। अगर मैं चाहूं तो शिकार को जाते वक्त एक की जगह कई आदमी लेजा सकता हूं। लेकिन मेरी आदत कुछ ऐसी पड़ गई है कि चोर की तरह अकेले जाना ही मुझे अच्छा लगता है। शिकार के हाथ लग जाने पर मुझे उतनी ही ख़ुशी होती है जितनी कि चोरको मनमाना माल मिलजाने से होती है।

एकदिन की बात सुनिये। गर्मी का मौसम था। पल पल पर गर्मी बढ़ती जाती थी और आदमी पानी पानी चिल्लाकर अपने गले को और भी ज़ियादा सुखाते जाते थे। ऐसे वक्त में मेरे गाँव के कुछ आदमी मेरे पास आये। उन्होंने कहा कि गाँव के पास का तालाब क़रीब क़रीब बिलकुल सूख गया है। बीच में थोड़ा सा पानी रहगया है। वही पानी पीकर हम लोग किसी तरह से अपने प्राण बचाते हैं। पर कई दिनों से, रात के वक्त, एक बहुत बड़ा जंगली सुअर वहां पर आता है। वह उस कुण्ड से पानी भी पीता है और उसमें लेटकर बचे हुए पानी को कीचड़ कर देता है। इस वजह से वह पानी हम लोगों के पीने के लायक़ नहीं रह जाता। आप इसका कुछ बन्दोबस्त कीजिये।

यह सुनकर मुझे बड़ी ख़ुशी हुई, क्योंकि मैं एक शौक़ीन शिकारी हूं और निशाना भी बहुत अच्छा लगाता हूं। मैंने उन लोगों से कहा कि आज चाँदनी रात है। इसलिए आज ही मैं इस सुअर का शिकार खेलना चाहता हूं। तुम अभी जाकर तालाब के पास के पेड़ पर एक मचान बना दो। वे तो यह चाहते ही थे। उन्होंने फ़ौरन ही एक मचान मेरे लिए तैय्यार कर दिया।

रात हुई। आठ बज गये। मैंने खाने को खाया; अपनी मामूली शिकारी पोशाक पहनी; बन्दूक़ हाथ में उठाई और एक भाला और एक पेश क़ब्ज़ भी हाथ में लिया। इस तरह साज सामान से दुरुस्त होकर मैं उस तालाब की तरफ़ रवाना हुआ। तालाब के पास पेड़ पर मचान को देख कर मैं ख़ुशी से फूल उठा। भाले को मैंने उस मचान के ठीक नीचे गाड़ दिया और चढ़कर उसके ऊपर आसन जमाकर मैं बैठ गया।

वहां पर मैं बिलकुल अकेला था। मगर मैं बड़ा निडर हूं। मुझे ज़रा भी डर न लगा। वायु मन्द मन्द चल रही थी। उसने नींद को झटपट मेरे आंखों के सामने लाकर खड़ा कर दिया। मगर मैं उसके क़ाबू में आनेवाला आदमी नहीं। इसलिये उस बेचारी को मुझ से दो गज़ दूरही खड़ा रहना पड़ा।

इतने में कुछ दूर पर मुझे आहट मालूम हुई। मैं समझ गया कि वराह महाराज की सवारी आगई। मेरा यह अनुमान ठीक निकला। तालाब के पास एक गुफ़ा थी। वहीं पर वह सुअर आकर कन्द मूल खोद खोद कर खाने लगा। मैंने अपनी बन्दूक़ सँभाली, और इस ताक में लगा, कि वह सुअर वहां से ज़रा और आगे बढ़े तो मैं उसे अपनी गोली का निशाना बनाऊं। इतने में एक और अजीब घटना हुई। जिस पेड़ पर मैं था उसपर एक बड़ा ही भयानक साँप चढ़ा। साँप काला था। वह धीरे धीरे मेरे मचान की तरफ़ बढ़ा और मेरे ऊपर चढ़ आया। मैं काँप उठा। मैंने समझा कि मेरी मौत आगई। मगर मैं चिल्लाया नहीं। और न उस साँप को अपने शरीर से अलग फेंक देने ही की मैंने कोशिश की। मैंने सोचा कि अगर मैं चिल्लाऊंगा, या इस साँप को



कुमुदसुन्दरी ।

[रविवर्म्मा कृत]

पकड़कर ज़मीन में पटकूंगा, तो आवाज़ सुनकर वह सुअर भाग जायगा। अब आप समझ गये होंगे कि जैसा मैंने ऊपर कहा है, मुझे अपने प्राण उतने प्यारे नहीं हैं, जितना कि मुझे शिकार प्यारा है।

मैं पत्थर का होगया। ज़रा भी अपने आसन को मैंने नहीं हिलाया। वह साँप पीठ से मेरे कन्धे पर आया। और कन्धे से पेट की तरफ नीचे उतर कर उसने अपना फन मेरे पैर के अंगूठे और उसके पास की उंगली के बीच में डाला। अब मुझ से न रहा गया। वहां पर मैंने उसके सिर को इस मज़बूती के साथ दबाया कि वह साँप एकही मिनट में फटक फटक कर वहीं मर गया। मेरे शिकार का पहला काण्ड यहां पर ख़तम हो गया।

शूकरराज अब तक उस गुफ़ा के पास खोद ही खाद में लगे थे, कि तालाब के पास पानी पीने के लिये एक भयानक भालू आ पहुंचा। अगर मैं चाहता तो उसे वहीं पर मार गिराता। मगर सुअर के भाग जाने के डर से मैंने ऐसा करना मुनासिब नहीं समझा। जाम्बुवान्‌नन्दन पानी पीकर तालाब के पास खड़े खड़े दम लेने लगे। इतने में एक बहुत बड़ा शेर आता हुआ दिखाई दिया। शेर बहुत प्यासा था। इस लिए जल्दी जल्दी क़दम बढ़ाता हुआ वह आ रहा था। रीछराज की नज़र ज्योंही शेर पर पड़ी त्योंही आप पर क्वार के महीने की सी जूड़ी चढ़ आई। आपको उस वक्त और कुछ न सूझा। आप कँपते हुए उसी पेड़ पर चढ़े जिसपर कि मैं बैठा हुआ था। मेरे मचान के नीचे ही एक डाल थी। उसी पर वह आकर खड़ा हो गया और एक दूसरी डाल को अपने अगले पैरों से उसने खूब मज़बूती से पकड़ लिया। डर भी बुरा होता है। उस वक्त मारे डर के वह रीछ इतने ज़ोर से काँपता था कि वह उतना बड़ा पेड़ भी हिल रहा था। मैं आप से कोई बात छिपाना नहीं चाहता। मेरा बदन पसीने पसीने हो गया। मुझ पर ख़ौफ़ ग़ालिब हो आया। मैं ने कहा कि अगर मैं शोर करूंगा या कुछ भी हाथ पैर हिलाऊंगा, तो यह रीछ फ़ौरन ही मुझ पर हमला करेगा। इसलिए साहस करके मैं वहीं पर जमा हुआ बैठा रहा।

शेर तालाब के पास पहुंचा। पहुंचकर उसने अच्छी तरह पानी पिया। वह किनारे पर बैठ गया, और अपनी मूंछें सुधारने और धीरे धीरे गुर्राने लगा। शेर मेरे मचान के बिलकुल ही सामने था। यह हालत देखकर उस पर वार करने के लिए मैंने अपनी बन्दूक़ सँभाली। इस बीच में वह सुअर गुफ़ा की तरफ़ से चला और तालाब के पास आया। अहा! वह सुअर था कि हाथी का बच्चा! उँचाई में वह कोई ६ फुट था। उसके दो दांत हाथी के दांतों के समान बाहर निकले हुए थे। वे इतने बड़े और मज़बूत थे कि तीन चार फुट घेरे के तने वाले पेड़ को भी वह एक ही आघात में गिरा सकता था। उसे देख कर यह शंका होती थी कि कहीं प्रत्यक्ष दूसरे वराहजी तो नहीं अवतार ले आये।

आपने शायद सुना होगा कि बड़े बड़े जंगली सुअर शेर से नहीं डरते। सुअर के पैने पैने प्रकाशमान दांतों को देखकर शेर को सुअर पर हमला करने का साहस नहीं होता था। सुअर को सामने आता देख मेरे शिकारी जोश ने ज़ोर पकड़ा। उस भयानक अवस्था में भी मैंने कन्धे पर बन्दूक़ रक्खी और सुअर को लक्ष्य करके गोली छोड़ दी। यकायक दन की आवाज़ हुई। सुअर को गोली लगी। मगर उसने समझा कि सामने बैठे हुए गुर्राने वाले शेर ने मुझ पर यह चोट की है। बस, एकदम वह शेर पर टूट पड़ा। दोनों में बड़ा भयानक युद्ध हुआ। आख़िरकार वनराज को शूकरराज की कराल डाढ़ों का चबेना हो जाना पड़ा। इधर मेरी गोली के आघात से वराहजी भी स्वर्गलोक को सिधारे। यहां पर मेरे शिकार का दूसरा भी काण्ड समाप्त हुआ।

आपसे मैं कह चुका हूं कि एक भाला मैं घर से ले आया था और मचान के नीचे ही उसे मैंने सीधा खड़ा कर दिया था। ज्योंही मेरी बन्दूक़ से गोली छूटी और दन से आवाज़ हुई, त्योंही नीचे डाल पर बैठे हुए रीछ ने समझा कि वह उसी पर छोड़ी गई। इससे मारे डर के उसके हाथ से वह डाल, जो उसने हाथों से पकड़ रक्खी थी, सहसा छूट गई। रीछ डाल से नीचे गिरा। मगर ज़मीन पर पहुंचने के पहले ही मेरा भाला उसकी छाती को पार कर गया। ज़रा देर में उस रीछ का भी काम तमाम हो गया और उसके साथ मेरे शिकार का यह तीसरा काण्ड भी तमाम हुआ।

इस बहादुरी के लिये आप चाहे मुझे शाबाशी दें। चाहे मेरी सिफ़ारश करके गवर्नमेण्ट से विक्टोरिया-क्रास का पदक दिलावें। मगर अब मैं कभी बन्दूक़ हाथ से न उठाऊंगा। मैंने शिकार करना एक दम छोड़ दिया है। मैं नहीं चाहता कि मैं अपनी जान को फिर इतने बड़े जोखों में डालूं।

निज़ामशाह।

स्वाधीनता की भूमिका।

इङ्गलैण्ड में जान स्टुअर्ट मिल नामक एक तत्त्ववेत्ता हो गया है। उसे मरे अभी कुल ३१ वर्ष हुए। उसने कई अच्छी अच्छी पुस्तकें लिखी हैं। उनमें से एक का नाम 'लिबर्टी' (Liberty) है। इस पुस्तक को हमने हिन्दी में अनुवादित किया है। यह लेख इस पुस्तक की भूमिका-मात्र है।

मिल का जन्म २० मई १८०६ को लण्डन में हुआ। इसका पिता जेम्स मिल भी अपने समय में एक प्रसिद्ध तत्त्ववेत्ता था। जिस समय जान स्टुअर्ट मिल को उमर कोई १३ वर्ष की थी, उस समय उसके बाप को ईस्ट इण्डिया कम्पनी के दफ़्तर में एक जगह मिली। वहां उसे इस देश की अनेक बातें मालूम हुईं और सैकड़ों तरह के कागज़-पत्र और ग्रन्थ देखने को मिले। उनके आधार पर उसने भारतवर्ष का एक बहुत अच्छा इतिहास लिखा। यह इतिहास देखने के लायक़ है।

मिल के पिता ने मिल को किसी स्कूल या कालेज में पढ़ने नहीं भेजा। उसने खुद उसे पढ़ाना शुरू किया। जब तक उसे पढ़ाने की ज़रूरत समझी तब तक वह उसे बराबर पढ़ाता रहा। तीन वर्ष की उमर में मिल ने ग्रीक भाषा की वर्णमाला सीखी। आठ वर्ष की उमर में उसने इस भाषा का थोड़ा सा अभ्यास भी कर लिया। बहुत से गद्य ग्रन्थ उसने पढ़ डाले। आठवें वर्ष मिल ने लैटिन सीखना शुरू किया। कुछ दिन बाद अङ्क-गणित, बीजगणित और रेखागणित भी वह सीखने लगा। बारह वर्ष की उमर में मिल को ग्रीक और लैटिन का अच्छा ज्ञान हो गया। वह प्लेटो और अरिस्टाटल के गहन ग्रन्थ अच्छी तरह समझने लगा। दिल बहलाने के लिए वह इतिहास और काव्य भी पढ़ता था और कभी कभी कविता भी लिखता था। पोप का किया हुआ इलियड का भाषान्तर इसे बहुत पसन्द आया। उसे देखकर यह छोटी छोटी कविता लिखने लगा। इससे मिलको शब्दों का यथास्थान रखना आगया। पद्यरचना के विषय में मिलके पिता ने पुत्र को प्रतिकूलता नहीं की। यह काम उसकी अनुमति से मिल ने किया।

मिल को अपनी हमजोली के लड़कों के साथ खेलने कूदने को कभी नहीं मिला। उसने अपना आत्मचरित अपने हाथ से लिखा है। उसमें एक जगह पर वह लिखता है कि उसने एक दिनभी 'क्रिकेट' नहीं खेला। लड़कपन में यद्यपि वह बहुत मोटा ताज़ा और सशक्त नहीं था, तथापि वह इतना दुबला और अशक्त भी नहीं था कि उसके लिखने पढ़ने में बाधा आती। जब वह तेरह वर्ष का हुआ तब उसके बाप ने उसे विशेष गम्भीर विषयों की शिक्षा देना आरम्भ किया। ग्रीक, लैटिन

और अङ्गरेज़ी भाषा में उसने तत्त्वविद्या और तर्क-शास्त्र की अनेक पुस्तकें पढ़ डालीं। उसका बाप रोज़ बाहर घूमने जाया करता था। अपने साथ वह मिल को भी रखता था। राह में वह उससे अनेक प्रश्न करता जाता था। जो कुछ वह पढ़ता था उसमें वह उसकी रोज़ परीक्षा लेता था। जो चीज़ बाप पढ़ाता था उसका उपयोग भी वह पुत्र को बतला देता था। उसका यह मत था कि जिस चीज़ का उपयोग मालूम नहीं, उसका पढ़ना ही व्यर्थ है। तर्कशास्त्र अर्थात् न्याय, और तत्त्वविद्या अर्थात् दर्शन शास्त्र, में मिल थोड़े ही दिनों में प्रवीण हो गया। किसी ग्रन्थकार के मत या प्रमाण को क़बूल करने के पहले उसकी जांच करना मिलको बहुत अच्छी तरह से आगया। दूसरों की प्रमाण-शृङ्खला में वह बड़ी योग्यता से दोष ढूंढ़ निकालने लगा। यह बात सिर्फ़ अच्छे नैयायिक और दार्शनिक पण्डितों में ही पाई जाती है। क्योंकि प्रतिपक्षी की इमारत को अपनी प्रबल दलीलों से ढहाकर उसपर अपनी नई इमारत को खड़ा करना सबका काम नहीं है। खण्डन-मण्डन की यह विलक्षण रीति मिल को लड़कपन ही में सिद्ध होगई। इसका फल भी बहुत अच्छा हुआ। यदि थोड़ी उमर में ही उसकी तर्कशक्ति इतनी प्रबल न हो जाती तो वह वयस्क होने पर इतने अच्छे ग्रन्थ न लिख सकता। मिल के घर उसके पितासे मिलने अनेक विद्वान आया करते थे। उनमें परस्पर अनेक विषयों पर वाद-विवाद हुआ करता था। उनके कोटिक्रम को मिल ध्यानपूर्वक सुनता था। इससे भी उसको बहुत फ़ायदा हुआ। उसकी बुद्धि बहुत जल्द विकसित हो उठी और बड़े बड़े गहन विषयों को वह समझ लेने लगा।

बाप की सिफ़ारिश से मिल ने प्लेटो के ग्रन्थ बहुत विचारपूर्वक पढ़े। इतिहास, राजनीति और अर्थशास्त्र का भी उसने अध्ययन किया। चौदह पन्द्रह वर्ष की उमर में उसका गृह-शिक्षण समाप्त हुआ। तब वह देश-पर्य्यटन के लिये निकला। फ़्रांस की राजधानी पेरिस में वह कई महीने रहा। इस यात्रा में उसे बहुत कुछ तजरुबा हुआ। कुछ दिन बाद, घूम घाम कर, वह लण्डन लौट आया। तब से उसकी यथानियम शिक्षा की समाप्ति हुई। जितनी थोड़ी उमर में मिल ने तर्क और अर्थशास्त्र आदि कठिन विषयों का ज्ञान प्राप्त कर लिया उतनी थोड़ी उमर में और लोगों के लिए इस बात का होना प्रायः असम्भव समझा जाता है।

१७ वर्ष की उमर में मिल ने इण्डिया हाउस नामक दफ़्तर में प्रवेश किया। वहां उसकी क्रम क्रम से उन्नति होती गई। अन्त में वह एग्ज़ामिनर के दफ़्तर का सबसे बड़ा अधिकारी हो गया। पर १८५८ ईसवी में जब ईस्ट इण्डिया कम्पनी टूटी तब यह दफ़्तर भी टूट गया। इस लिए इसे नौकरी से अलग होना पड़ा। कोई २५ वर्ष तक इसने नौकरी की। नौकरी ही की हालत में इसने अनेक उत्त-मोत्तम ग्रन्थ लिखे। इसका मत था कि जो लोग केवल पुस्तक-रचना करने और समाचार पत्रों में छपने के लिए लेख भेजने पर ही अपनी जीविका चलाते हैं उनके लेख अच्छे नहीं होते, क्योंकि वे जल्दी में लिखे जाते हैं। पर जो लोग जीविका का कोई और द्वारा निकाल कर पुस्तक-रचना करते हैं, वे सावकाश और विचार-पूर्वक लिखते हैं। इससे उनकी विचार-परम्परा अधिक मनोग्राह्य होती है और उनके ग्रन्थों का अधिक आदर भी होता है।

१८६५ से १८६८ तक मिल पारलियामेण्ट का मेम्बर भी रहा। वह यद्यपि अच्छा वक्ता न था, तथापि जिस विषय पर वह बोलता था सप्रमाण बोलता था। उसकी दलीलें बहुत मज़बूत होती थीं। ग्लैडस्टन साहब ने उसकी बहुत प्रसंशा की है। एकही बार मिल का प्रवेश पारलियामेण्ट में हुआ। कई कारणों से लोगों ने इसे दुबारा नहीं चुना। उन कारणों में सबसे प्रबल कारण यह था कि पार-लियामेण्ट में हिन्दुस्तान के हितचिन्तक ब्राडला साहब के प्रवेश-सम्बन्धी चुनाव में मिल ने उनकी

मदद की थी। ऐसे घोर नास्तिक की मदद ! यह बात लोगों को बरदाश्त न हुई। इसीसे उन्होंने दुबारा मिल को पारलियामेण्ट में नहीं भेजा। यह सुनकर कई जगह से मिल के निमंत्रण आया कि तुम हमारी तरफ़ से पारलियामेण्ट की उम्मेदवारी करो। परन्तु ऐसे झगड़े का काम मिल को पसन्द नहीं आया। इससे उसने उम्मेदवार होने से इनकार कर दिया। तबसे उसने एकान्तवास करने और लिखने पढ़ने में अपनी बाक़ी उमर बिताने का निश्चय किया। वह अविगनान नामक गाँव में जाकर रहने लगा। १८७३ में वहां उसकी मृत्यु हुई। उसका घर पुस्तकों और अख़बारों से भरा रहता था। साल में सिर्फ़ कुछ दिन के लिए वह अविगनान से लण्डन आता था।

जिस समय मिल की उमर २५ वर्ष की थी, उस समय टेलर नामक एक आदमी की स्त्री से उसकी जान पहचान हुई। धीरे धीरे दोनों में परस्पर स्नेह होगया। उसकी क्रम क्रम से वृद्धि होती गई। इस कारण लोग मिल को भला बुरा भी कहने लगे। उसके पिता को भी यह बात पसंद न आई। परन्तु प्रेम-प्रवाह में शिक्षा, दीक्षा और उपदेश कहीं ठहर सकते हैं ? २० वर्ष तक यह स्नेह-सम्बन्ध अथवा मित्रभाव अखण्डित रहा। इतने में टेलर साहब को मृत्यु हो गई। यह अवसर अच्छा हाथ आया देख ये दोनों प्रेमी विवाह-बन्धन में बँध गये। परन्तु सिर्फ़ सात वर्ष तक मिल साहब को इस स्त्री के समागम का सुख मिला। इसके बाद उसका शरीर छूट गया। इस वियोग का मिलको बेहद रंज हुआ। अविगनान ही में मिल ने उसे दफ़न किया और जो बातें उसे अधिक पसन्द थीं उन्हीं के करने में उसने अपनी बची हुई उमर का बहुतसा भाग बिताया। मिल के साथ विवाह होने के पहले ही इस स्त्री के एक कन्या थी। मा के मरने पर उसने मिल की बहुत सेवा शुश्रूषा की। उसने मिल को गृह-सम्बन्धी कोई तकलीफ़ नहीं होने दी।

मिल ने अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। वह अकसर प्रसिद्ध प्रसिद्ध अख़बारों और मासिक पुस्तकों में लेख भी दिया करता था। छोटी छोटी पुस्तकें तो उसने कई लिखी हैं। पर उस के जिन ग्रन्थों की बहुत अधिक महिमा है वे ये हैं—

(१) अर्थशास्त्र के अनुचित प्रश्नों पर निबन्ध (Essays on unsettled questions in Political Economy).

(२) तर्कशास्त्र-पद्धति (System of Logic).

(३) अर्थशास्त्र (Political Economy).

(४) स्वाधीनता (Liberty).

(५) पारलियामेण्ट के सुधारसम्बन्धी विचार (Thoughts on Parliamentary Reform).

(६) प्रतिनिधिसातात्मक राज्यव्यवस्था (Representative Government).

(७) स्त्रियों की पराधीनता (Subjection of women).

(८) हैमिल्टन के तत्त्वशास्त्र की परीक्षा (Examination of Hamilton's Philosophy).

(९) उपयोगितातत्व (Utilitarianism).

'प्रकृति' (Nature) और 'धर्म्म की उपयोगिता' (Utility of Religion) इन दो विषयों पर भी उसने निबन्ध लिखे; पर वे उसकी मृत्यु के बाद प्रकाशित हुए। मिल के पिता ने मिल को किसी विशेष प्रकार की धर्म्म-शिक्षा नहीं दी; क्योंकि उसका विश्वास किसी धर्म्म पर नहीं था। पर उसने सब धर्म्मों और धार्म्मिक सम्प्रदायों के तत्त्व मिल को अच्छी तरह समझा दिये थे। लड़कपन में इस तरह का संस्कार होने के कारण मिल के धार्म्मिक विचार अनोखे थे। उनको उसने 'धर्म्म की उपयोगिता' में बड़ी ही योग्यता से प्रगट किया है। उसकी स्त्री विदुषी थी। तत्त्वविद्या में वह भी ख़ूब प्रवीण थी। पुस्तकरचना में भी उसे अच्छा अभ्यास था। 'स्वाधीनता' और 'स्त्रियों की पराधीनता' को

मिल ने उसकी सहायता से लिखा है। और भी कई पुस्तकों के लिखने में उसने मिल की सहायता की थी। अपने आत्मचरित में मिल ने उसकी अत्यधिक प्रशंसा की है। 'स्वाधीनता' को उसने अपनी स्त्री ही को समर्पण किया है। उसका समर्पण भी बहुत ही विलक्षण है। उसमें उसने अपनी स्त्री की प्रशंसा की पराकाष्ठा कर दी है। मिल बड़ा उदार पुरुष था। सत्य के खोजने में वह सदैव तत्पर रहता था। जिस बात से अधिक आदमियों का हित हो उसीको वह सबसे अधिक सुखदायक समझता था। इस सिद्धान्त को उसने अपने 'उपयोगिता-तत्त्व' में बहुत अच्छी तरह से प्रमाणित किया है। नई और पुरानी चाल की ज़रा भी परवा न करके जिसे वह अधिक सयुक्तिक समझता था उसीको वह मानता था। वह सुधारक था; परन्तु उच्छृङ्खल और अविवेकी न था। उसने अनेक विषयों पर ग्रन्थ लिखे। जो लोग बिना समझे बूझे पुरानी बातों को वेद-वाक्य मानते थे उनके अनुचित विश्वासों को उसने विचलित कर दिया; उनकी सदसद्विचार-शक्ति को उसने जागृत कर दिया; उनकी विवेचना-रूपी तलवार पर जो मोरचा लग गया था उसे उसने जड़ से उड़ा दिया।

मिल के ग्रन्थों में से स्वाधीनता, उपयोगिता-तत्त्व, न्यायशास्त्र और स्त्रियों की पराधीनता-इन चार ग्रन्थों का बड़ा मान है। इन पुस्तकों में मिल ने जिन विचारों से-जिन दलीलों से-काम लिया है, वे बहुत प्रबल और अखण्डनीय हैं। यद्यपि कई विद्वानों ने मिल की विचार-परम्परा का खण्डन किया है, तथापि वे कृतकार्य्य नहीं हुए-उनको कामयाबी नहीं हुई। ये ग्रन्थ सब कहीं प्रीतिपूर्वक पढ़े जाते हैं। स्वाधीनता में मिल ने जिन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है, वे बहुत ही दृढ़ प्रमाणों के आधार पर स्थित हैं। यह बात इस पुस्तक के पढ़ने से अच्छी तरह मालूम हो जायगी।

इस पुस्तक में पांच अध्याय हैं। उनकी विषय-योजना इस प्रकार है—

पहला अध्याय—प्रस्तावना।

दूसरा अध्याय—विचार और विवेचना की स्वाधीनता।

तीसरा अध्याय—व्यक्ति-विशेषता भी सुख का एक साधन है।

चौथा अध्याय—व्यक्ति पर समाज के अधिकार की सीमा।

पांचवां अध्याय—प्रयोग।

मिल साहब का मत है कि व्यक्ति के बिना समाज या गवर्नमेण्ट का काम नहीं चल सकता और समाज या गवर्नमेण्ट के बिना व्यक्ति का काम नहीं चल सकता। अतएव दोनों को परस्पर एक दूसरे की आकांक्षा है। पर एक को दूसरे के काम में अनुचित हस्तक्षेप करना मुनासिब नहीं। जिस काम से किसी दूसरे का सम्बन्ध नहीं उसे करने के लिए हर आदमी स्वाधीन है। न उसमें समाज ही को कोई दस्तन्दाज़ी करना चाहिए और न गवर्नमेण्ट ही को। पर, हां, उस काम से किसी और आदमी का अहित न होना चाहिए। ग्रन्थकार ने स्वाधीनता के सिद्धान्तों का प्रतिपादन बड़ी ही योग्यता से किया है। उसकी विवेचना-शक्ति की जितनी प्रशंसा की जाय कम है। उसने प्रतिपक्षियों के आक्षेपों का बहुत ही मज़बूत दलीलों से खण्डन किया है। उसकी तर्कना-प्रणाली ख़ूब सबल और प्रमाण-पूर्ण है।

स्वाधीनता का दूसरा अध्याय सब अध्यायों से अधिक महत्व का है। इसीसे वह औरों से बड़ा भी है। इस अध्याय में जो बातें हैं उनके जानने की आज कल बड़ी ही ज़रूरत है। आदमी का सुख विशेष करके उसकी मानसिक स्थिति पर अवलम्बित रहता है। मानसिक स्थिति अच्छी न होने से सुख की आशा करना दुराशा मात्र है। विचार और विवेचना करना मन का धर्म्म है। अतएव इन के द्वारा मनको उन्नत करना चाहिए। मनुष्य के लिए सबसे अधिक अनर्थकारक बात विचार और विवेचना का प्रतिबन्ध है। जिसे जैसे विचार सूझ

पड़े उसे उन्हें साफ़ साफ़ कहने देना चाहिए। इसी में मनुष्य का कल्याण है। इसी से, जितने सभ्य-देश हैं उनकी गवर्नमेण्टों ने सब लोगों को यथेच्छ विचार, विवेचना, और आलोचना करने की अनुमति दे रक्खी है। कल्पना कीजिए कि किसी विषय में कोई आदमी अपनी राय देना चाहता है और उसकी राय ठीक है। अब यदि उसे बोलने की अनुमति न दी जायगी तो सब लोग उस सच्ची बात के जानने से वञ्चित रहेंगे। यदि वह बात या राय सर्वथा सच नहीं है, केवल उसका कुछ ही अंश सच है, तो भी यदि वह प्रकट न की जायगी—ज़ाहिर न की जायगी—तो उस सत्यांश से भी लोग लाभ न उठा सकेंगे। अच्छा, अब मान लीजिए कि कोई पुराना ही मत ठीक है, नया मत ठीक नहीं है। इस हालत में भी यदि नया मत प्रकट न किया जायगा तो पुराने की ख़ूबियां लोगों की समझ में अच्छी तरह न आवेंगी। दोनों के गुण-दोषों पर जब अच्छी तरह विचार होगा तभी यह बात ध्यान में आवैगी; अन्यथा नहीं। एक बात और भी है। वह यह कि प्रचलित रूढ़, या परम्परा से प्राप्त हुई बातों, या रस्मों, के विषय में प्रतिपक्षियों के साथ वाद-विवाद न करने से उनकी सजीवता जाती रहती है। उनका प्रभाव धीरे धीरे मन्द होता जाता है। इसका फल यह होता है कि कुछ दिनों में लोग उनके मतलब को बिलकुल ही भूल जाते हैं और सिर्फ़ पुरानी लकीर को पीटा करते हैं।

मिल की मूल पुस्तक की भाषा बहुत क्लिष्ट है। कोई कोई वाक्य प्रायः एक एक पृष्ठ में समाप्त हुए हैं। विषय भी पुस्तक का क्लिष्ट है। इससे इस अनुवाद में हमको बहुत कठिनता का सामना करना पड़ा है। हमको डर है कि हमसे अनुवाद-सम्बन्धी अनेक भूलें हुई होंगी। अतएव हमको उचित था कि हम ऐसे कठिन काम में हाथ न डालते। पर जिन बातों का विचार इस पुस्तक में है उनके जानने की, इस समय, बड़ी आवश्यकता है। अतएव मिल साहब के विचारों के अनुसार जब तक कोई अनुवाद सर्वथा निर्दोष न प्रकाशित हो तब तक इसका जितना भाग निर्दोष या पढ़ने के लायक़ हो उतने ही से पढ़नेवाले स्वाधीनता के सिद्धान्तों और लाभों से जानकारी प्राप्त करें।

यदि कोई यह कहै कि हिन्दी के साहित्य का मैदान बिलकुल ही सूना पड़ा है, तो उसके कहने को अत्युक्ति न समझना चाहिए। दश पांच क़िस्से, कहानियां, उपन्यास या काव्य आदि पढ़ने लायक़ पुस्तकों का होना साहित्य नहीं कहलाता और न कूड़े कचरे से भरी हुई पुस्तकों ही का नाम साहित्य है। इस अभाव का कारण हिन्दी पढ़ने लिखने में लोगों की अरुचि है। हमने देखा है कि जो लोग अच्छी अङ्गरेज़ी जानते हैं, अच्छी तनख़्वाह पाते हैं, और अच्छी जगहों पर काम करते हैं, वे हिन्दी के मुख्य मुख्य ग्रन्थों और अख़बारों का नाम तक नहीं जानते। आश्चर्य्य यह है कि अपनी इस अनभिज्ञता पर वे लज्जित भी नहीं होते। हां, लज्जित वे इस बात पर ज़रूर होते हैं यदि समय का सत्यानाश करने वाले अपने मित्रमण्डल में बैठ कर वे यह न बतला सकें कि अमुक मुन्शी साहब, या अमुक मिरज़ा साहब, या अमुक पण्डत (!) साहब आज कल कहां पर डिप्युटी कलेकृर हैं; अमुक साहब कहां की कलेकृरी पर बदल दिये गये हैं; अमुक सदरआला साहब कब छुट्टी पर जायँगे; अमुक मुनसरिम साहब के लड़के की शादी कहां हुई है; अमुक हेड मास्टर साहब नौकरी से क.ब अलग होंगे! एक दिन एक मशहूर ज़िला-स्कूल के हेड मास्टर ने अपने स्कूल के ढोलन (Roller) का इतिहास वर्णन करके हमारे दो घण्टे नष्ट कर दिये। पर अनेक अच्छी अच्छी पुस्तकों का नाम लेने पर आपने एक के भी देखने की इच्छा न प्रकट की। इसका कारण रुचि-विचित्रता है। यदि ऐसे आदमियों में से दस पांच भी अपने देश के साहित्य की तरफ़ ध्यान दें और उपयोगी विषयों पर पुस्तकें लिखें तो बहुत जल्द देशोन्नति का द्वार खुल जाय। क्योंकि शिक्षा के प्रचार के बिना उन्नति नहीं हो सकती।

और देश में फ़ीसदी दो चार आदमियों का शिक्षित होना न होने के बराबर है। शिक्षा से यथेष्ट लाभ तभी होता है जब हर गांव में उसका प्रचार हो। और यह बात तभी सम्भव है जब अच्छे अच्छे विषयों की पुस्तकें देश-भाषा में प्रकाशित होकर सस्ते दामों पर बिकेंगी। जापान की तरफ़ देखिए। उसने जो इतना जल्द इतनी आश्चर्यजनक उन्नति की है उसका कारण विशेष करके शिक्षा का प्रचार ही है। हमने एक जगह पर पढ़ा है कि जिस जापानी ने मिल साहब की स्वाधीनता (Liberty) का अपनी भाषा में अनुवाद किया, वह सिर्फ़ इसी एक पुस्तक को लिख कर अमीर हो गया। थोड़े ही दिनों में उसकी लाखों कापियां बिक गईं। जापान के राजेश्वर ख़ुद मिकाडो ने उसकी कई हज़ार कापियां अपनी तरफ़ से मोल लेकर अपनी प्रजा को मुफ़्त में बाँट दीं। परन्तु इस देश की दशा बिलकुल ही उलटी है। यहां मोल लेने का तो नाम ही न लीजिए, यदि इस तरह की पुस्तकें यहां के राजा, महाराजा और अमीर आदमियों के पास कोई योंही भेज दे, तो भी शायद वे उन्हें पढ़ने का श्रम न उठावें। इससे बहुत सम्भव है कि हमारी यह पुस्तक बेछपी ही रह जाय! ख़ैर!

इस दशा में हमारी राय यह है कि इस समय हिन्दी में जितनी पुस्तकें लिखी जांय, ख़ूब सरल भाषा में लिखी जांय। यथासम्भव उनमें संस्कृत के कठिन शब्द न आने पावें। क्योंकि जब लोग सीधी सादी भाषा की पुस्तकों ही को नहीं पढ़ते, तब वे क्लिष्ट भाषा की पुस्तकों को क्यों छूने लगे। अतएव जो शब्द बोल चाल में आते हैं—फिर चाहे वे फ़ारसी के हों, चाहे अरबी के हों, चाहे अंग्रेज़ी के हों—उनका प्रयोग बुरा नहीं कहा जा सकता। पुस्तक लिखने का मतलब सिर्फ़ यह है कि उसमें जो कुछ लिखा गया है उसे लोग समझ सकें। यदि वह समझ में न आया, अथवा क्लिष्टता के कारण उसे किसीने न पढ़ा, तो लेखक की मेहनत ही बरबाद जाती है। पहले लोगों में साहित्य-प्रेम पैदा करना चाहिए। भाषा-पद्धति पीछे से ठीक होती रहैगी।

इन्हीं कारणों से प्रेरित होकर हमने इस पुस्तक में हिन्दी, उर्दू, फ़ारसी और संस्कृत इत्यादि के शब्द—जहां पर हमें जैसी ज़रूरत जान पड़ी है—प्रयोग किये हैं। मतलब को ठीक ठीक समझाने के लिए कहीं कहीं पर हमने एकही बात को दो दो तीन तीन तरह से लिखा है। कहीं कहीं पर एकही अर्थ के बोधक अनेक शब्द हमने रक्खे हैं। कहीं मूल के भाव को हमने बढ़ा दिया है और कहीं पर कम कर दिया है। यदि पुस्तक उपयोगी समझी गई और यदि लोगों ने इसे पढ़ने की कृपा की (जिसकी हमें बहुत कम आशा है) तो इसकी भाषा को ठीक करने में देर न लगैगी। इस पुस्तक का विषय ऐसा कठिन है कि कहीं कहीं पर इच्छा न रहते भी, विवश होकर, हमें संस्कृत के क्लिष्ट शब्द लिखने पड़े हैं। क्योंकि उनसे सरल शब्द हमें मिले ही नहीं।

जून १९०४ में जब हम झांसी से कानपुर आये तब हमने, आज कल के समय के अनुकूल, कुछ उपयोगी किताबें लिखने का विचार किया। हमारा इरादा पहले औरही एक पुस्तक के लिखने का था। परन्तु बीच में एक ऐसी घटना हो गई जिससे हमें उस इरादे को रहित करके इस पुस्तक को लिखना पड़ा। ७ जनवरी को आरम्भ करके १३ जून को हमने इसे समाप्त किया। बीच में, कई बार, अनिवार्य्य कारणों से अनुवाद का काम हमें बन्द भी रखना पड़ा। किसी सार्वजनिक समाज की सार्वजनिक बातों की यदि समालोचना होती है तो वह समालोचना उसे अक्सर अच्छी नहीं लगती। इससे उसे रोकने की वह चेष्टा करता है। जब उसे यह बात बतलाई जाती है कि सार्वजनिक कामों की आलोचना का प्रतिबन्ध करने से लाभ के बदले हानि ही अधिक होती है, तब वह अक्सर यह कह बैठता है कि हम समालोचना को नहीं रोकते, किन्तु "व्यर्थ निन्दा" को रोकना चाहते हैं। अतएव ऐसे व्यर्थ-निन्दा-प्रतिबन्धक लोगों के

लाभ के लिए हमने पहले इसी पुस्तक के लिखना मुनासिब समझा। क्यों कि प्रतिबन्ध-हीन विचार और विवेचना की जितनी महिमा इस पुस्तक में गाई गई है उतनी शायद ही कहीं हो।

जिस आदमी के सर्वज्ञ होने का दावा नहीं है, उसे अपने काम काज की विवेचना या समालोचना के रोकने की भूल से भी चेष्टा न करना चाहिए। और इस तरह की चेष्टा करना सार्वजनिक समाज के लिए तो और भी अधिक हानिकारक है। भूलना मनुष्य की प्रकृति है। बड़े बड़े महात्माओं और विद्वानों से भूलें होती हैं। इससे यदि समालोचना बन्द कर दी जायगी–यदि विचार और विवेचना की स्वाधीनता छीन ली जायगी–तो सत्य का पता लगाना असम्भव हो जायगा। लोगों की भूलें उनके ध्यान में आवैंगी किस तरह? हां, यदि वे सर्वज्ञ हों तो बात दूसरी है।

व्यर्थ निन्दा कहते किसे हैं? व्यर्थ निन्दा से मतलब शायद झूठी निन्दा से है। जिसमें जो दोष नहीं है उसमें उस दोष के आरोपण का नाम व्यर्थ निन्दा हो सकता है। परन्तु इसका जज कौन है कि निन्दा व्यर्थ है या अव्यर्थ है? जिसकी निन्दा की जाय वह? यदि यही न्याय है तो जितने मुजरिम हैं उन सब की ज़बान ही के सेशन कोर्ट समझना चाहिए। इतनाही क्यों, इस दशा में यह भी मान लेना चाहिए कि हाईकोर्ट और प्रिवी कौंसिल के जजों का काम भी मुजरिमों की ज़बानही के सिपुर्द है। कौन ऐसा मुजरिम होगा जो अपने ही मुहँ से अपने के दोषी क़बूल करैगा? कौन ऐसा व्यक्ति होगा जो अपनी निन्दा के सुनकर खुशी से इस बात के मान लेगा कि मेरी उचित निन्दा हुई है? जो इतने साधु, इतने सत्यशील, इतने सच्चरित होते हैं कि अपनी यथार्थ निन्दा के निन्दा और दोष के दोष क़बूल करते नहीं हिचकते, उनकी कभी निन्दा ही नहीं होती। उन पर कभी किसी तरह का जुर्म्म ही नहीं लगाया जाता। अतएव जो कहते हैं कि हम अपनी व्यर्थ निन्दा मात्र के रोकना चाहते हैं, वे मानों इस बात की घोषणा देते हैं कि हमारी बुद्धि ठिकाने नहीं, हम व्यर्थ प्रलाप कर रहे हैं; हम अपनी अज्ञानता के सबके सामने रख रहे हैं। जो समझदार हैं वे अपनी निन्दा के प्रकाशित होने देते हैं। और जब निन्दा प्रकाशित होजाती है तब, उपेक्ष्य होने के कारण, या तो उसे उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं, या वे इस बात के सप्रमाण सिद्ध करते हैं कि उनकी जो निन्दा हुई है वह व्यर्थ है। अपने पक्ष का जब वे समर्थन कर चुकते हैं तब सर्व-साधारण जज का काम करते हैं। दोनों पक्षों की दलीलों के सुनकर वे इस बात का फ़ैसला करते हैं कि निन्दा व्यर्थ हुई है या अव्यर्थ।

हम कहते हैं कि जब तक कोई बात प्रकाशित न होगी तब तक उसकी व्यर्थता या अव्यर्थता साबित किस तरह होगी? क्या निन्द्य व्यक्ति के उसकी निन्दा सुना देनेही से काम निकल सकता है? हरगिज़ नहीं। क्यों कि सम्भव है वह अपनी निन्दा के स्तुति समझे। और यदि निन्दा के वह निन्दा मान भी ले तो उसे दण्ड कौन देगा? जिन लोगों के काम काज का सर्व-साधारण से सम्बन्ध है, उनकी निन्दा सुनकर सब लोग जब तक उनका धिक्कार नहीं करते तब तक उनके धिक्कार-रूप उचित दण्ड नहीं मिलता। जो लोग इन दलीलों के नहीं मानते, वे शायद अख़बारवालों से किसी दिन यह कहने लगें कि तुमको जिसकी निन्दा करना हो, या जिसपर दोष लगाना हो उसे अख़बार में प्रकाशित न करके चुपचाप उसे लिख भेजो! परन्तु जिनकी बुद्धि ठिकाने है–जो पागल नहीं हैं–वे कभी ऐसा न कहेंगे।

कल्पना कीजिए कि किसी की राय या समालोचना के बहुत आदमियों ने मिलकर झूठ ठहराया। उन्होंने निश्चय किया कि अमुक आदमी ने अमुक सभा, समाज, संस्था या व्यक्ति की व्यर्थ निन्दा की। तो क्या इतने से भी उनका निश्चय निर्भ्रान्त सिद्ध होगया? साक्रेटिस पर व्यर्थ निन्दा करने का दोष लगाया गया। इस लिए उसे अपनी जान से भी हाथ धोना पड़ा। परन्तु इस समय सारी



स्वर्गवासी महाराजा सर जङ्गबहादुर राना,

जी. सी. बी., जी. सी. एस आई., इत्यादि ।

दुनिया इस अविचार के लिए अफ़सोस कर रही है; और साक्रेटिस के सिद्धान्तों की शतमुख से प्रशंसा होरही है। क्राइस्ट के उपदेशों को निन्द्य समझ कर यहूदियों ने उसे सूली पर चढ़ा दिया। फिर क्यों आधी दुनिया इस निन्दक के चलाये हुए धर्म्म को मानती है? बौद्धों ने शङ्कराचार्य्य को क्या अपने मत का व्यर्थ निन्दक नहीं समझा था? फिर, बतलाइए यह सारा हिन्दुस्तान क्यों उनको शङ्कर का अवतार मानता है? जब सैकड़ों वर्ष वाद-विवाद होने पर भी निन्दा की यथार्थता नहीं साबित की जा सकती, तब किसी बात को पहलेही से कह देना कि यह हमारी व्यर्थ निन्दा है, अतएव इसे मत प्रकाशित करो, कितनी बड़ी धृष्टता का काम है! निन्दा-प्रतिबन्धक मत के अनुयायीही इस धृष्टता—इस अविचार—का परिमाण निश्चित करने की कृपा करें।

जिन लोगों का यह ख़याल है कि "व्यर्थ निन्दा" के प्रकाशन को रोकना अनुचित नहीं है, वे सदय-हृदय होकर यदि मिल साहब की दलीलों को सुनेंगे और अपनी सर्वज्ञता को ज़रा देर के लिए अलग रख देंगे तो उनको यह बात अच्छी तरह मालूम होजायगी कि वे कितनी समझ रखते हैं। निन्दा-प्रतिबन्धक मत के जो पक्षपाती मिल साहब की मूल पुस्तक को अङ्गरेज़ी में पढ़ने के बाद "व्यर्थ निन्दा" के रोकने की चेष्टा करते हैं, उनके अज्ञान, हठ और दुराग्रह की सीमा और भी अधिक दूर-गामिनी है। क्योंकि जब मिल के सिद्धान्तों का खण्डन बड़े बड़े तत्त्व-दर्शी विद्वानों से भी अच्छी तरह नहीं हो सका, तब औरों की क्या गिनती है? परन्तु यदि उन्होंने मूल पुस्तक को नहीं पढ़ा तो अब वे कृपापूर्वक इस अनुवाद को पढ़ें। इससे उनकी समझ में यह बात आजायगी कि अपनी निन्दा के प्रकाशन को—चाहे वह निन्दा व्यर्थ हो चाहे अव्यर्थ—रोकने की चेष्टा करना मानों इस बातका सबूत देना है कि वह निन्दा झूठ नहीं बिलकुल सच है। व्यर्थ निन्दा के असर को दूर करने का एकमात्र उपाय यह है कि जब निन्दा प्रकाशित हो ले तब उसका सप्रमाण खण्डन किया जाय और दोनों पक्षों के वक्तव्य का फ़ैसला सर्व-साधारण की राय पर छोड़ दिया जाय। ऐसे विषयों में जन-समुदाय ही जज का काम कर सकता है। उसीकी राय मान्य हो सकती है। जो इस उपाय का अवलम्बन नहीं करते; जो ऐसी बातों को जन-समूह की रायपर नहीं छोड़ देते; जो अपने मुक़दमे के आपही जज बनना चाहते हैं; उनके तुच्छ, हेय और उपेक्ष्य प्रलापों पर समझदार आदमी कभी ध्यान नहीं देते। ऐसे आदमी तब होश में आते हैं जब अपने अहंमानी स्वभाव के कारण अपना सर्वनाश कर लेते हैं। ईश्वर इस तरह के आदमियों से समाज की रक्षा करे!

देशव्यापक लिपि।

देश में एक भाषा और एक लिपि के प्रस्ताव का सूत्रपात हुए बहुत दिन हुए। इस विषय की आवश्यकता, उपयोगिता और गुरुता पर महाराष्ट्र और गुर्जर देश के कई सुविज्ञ लेखकों ने लेख लिखे हैं। सरस्वती के भी चौथे भाग में इस विषय से सम्बन्ध रखने वाला एक निबन्ध निकल चुका है। इस निबन्ध में एक भाषा और एक लिपि की आवश्यकता पर विशेष प्रकार से विचार किया गया है। समाज का जो भाग अधिक उत्साही, अधिक प्रभुतावान् और अधिक विद्या-व्यासङ्गी होता है, उसके प्रस्तावों का—उसकी बातों का—समाज पर अधिक असर पड़ता है। चार भाइयों में जो भाई—चाहे वह सबसे छोटा क्यों न हो—अधिक योग्य, प्रतिष्ठित और समाजमान्य होता है उसीकी बात अकसर सब भाई मानते हैं। जो जितनाही अधिक विद्वान् है उसकी बुद्धि भी उतनीही अ[illegible]क काम देती है। इन्हीं सब बातों का विचार करके हमने

"सरस्वती" में सूचना दी थी कि यदि बङ्गाली विद्वान् इस विषय में अगुआ हों तो कार्य्यसिद्धि की अधिक आशा है। हर्ष की बात है, हमारी सूचना व्यर्थ नहीं गई। चाहे यह बात काकतालीय न्याय से हो हुई हो, पर हुई अवश्य। जबसे कलकत्ते की हाईकोर्ट के भूतपूर्व जज माननीय शारदाचरण मित्र ने एक प्रबन्ध पढ़कर देश में एक लिपि होने का प्रस्ताव किया, तब से इस विषय में कुछ सजीवता आने लगी है।

देश में एक लिपि होने के विषय में माननीय शारदाचरण के प्रस्ताव का अनुमोदन भी हुआ है और विरोध भी। अनुमोदन-कर्त्ताओं की संख्या अधिक है, विरोधियों की कम। विरोध-कर्त्ताओं में विशेष करके अङ्गरेज़ हैं। उनकी दलीलों का खण्डन माननीय शारदा बाबू ने बड़ी योग्यता से किया है। इस विषय में उनके कई युक्तिपूर्ण और विद्वत्ता-गर्भित लेख अङ्गरेज़ी और बँगला मासिक पुस्तकों में निकल चुके हैं। उनके अगुआ होने से इस विषय को अधिक महत्व मिला है; उसमें कुछ कुछ प्राणसञ्चार हो आया है; उसकी उपयोगिता लोगों के ख़याल में आने लगी है। इस विषय का विचार शुरू हो गया है। जब विचार होता है तब विवाद भी होता है। विवाद होने से सत्यही की जीत होती है। और सत्य से लाभ के सिवा हानि नहीं होती। देशभर में एक व्यापक लिपि की आवश्यकता है। यह बात सच है। इससे यदि ऐसी लिपि का प्रचार हो जाय तो अवश्य लाभ हो। इसमें संदेह नहीं।

योरप में इङ्गलेण्ड, फ्रांस, स्पेन, जर्मनी, रूस, इटली, स्वीडन आदि अनेक देश हैं। उन सबकी भाषा अलग अलग है। पर लिपि सबकी एक है। यही क्यों? जो लिपि योरप में है वही अमेरिका में भी है, वही हज़ारों कोस दूर आस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैण्ड आदि टापुओं में भी है। इसका फल भी प्रत्यक्ष है। एक लिपि में लिखी जाने और प्रत्येक भाषा की अनेक शब्दों की उत्पत्ति ग्रीक और रोमन आदि पुरानी भाषाओं से होने के कारण योरप और अमेरिकावाले अपनी भाषा के सिवा दो दो चार चार अन्यभाषायें भी सहजही में सीख लेते हैं। इस तरह अन्यभाषाओं के विद्वानों के ग्रन्थ और लेखों से वे बहुत कुछ लाभ उठाते हैं। इस कारण उनमें परस्पर सहानुभूति और एकता बढ़ जाती है। एक देश में रहने, एक तरह की पोशाक पहनने और एक धर्म्म को मानने से परस्पर बन्धु-भाव अवश्यही उत्पन्न होजाता है। परन्तु पारस्परिक सहानुभूति और बन्धुता उत्पन्न करने की, एक लिपि में, इन बातों की भी अपेक्षा अधिक शक्ति है। भिन्न धर्म्म, भिन्न परिच्छद और भिन्न देश होने पर भी लिपि एक होने से पारस्परिक सहानुभूति जागृत हुए बिना नहीं रहती। जहां किसी तरह की समता होती है, वहां ममता ज़रूर उत्पन्न होती है। और ममता से एकता आती है। एकता ही देश का बल है। जहां एकता नहीं होती वहां बल का सदैव अभाव रहता है और जो समाज निर्बल है—जिसमें एकता रूपी बल नहीं है—उसे निर्जीव समझना चाहिए। ऐसे देश का अधःपतन अवश्य होता है, चाहे विलम्ब से हो चाहे अविलम्ब से।

व्यापक भाषा होने के लिए—देश भर में एक भाषा प्रचलित करने के लिए—एक लिपि का होना कार्य्य-सिद्धि का अव्यर्थ साधक है। एक भाषा का होना अधिक कष्टसाध्य है। पर एक लिपि का होना उतना कष्टसाध्य नहीं। यही समझ कर माननीय शारदाचरण ने व्यापक भाषा की बात छोड़ कर अभी सिर्फ़ व्यापक लिपि की बात उठाई है। ऐसे काम क्रमही क्रम हो सकते हैं। नीचे की सीढ़ी पर पैर रख करही आदमी ऊपर की सीढ़ी तक पहुंच सकता है। एकदम उछल कर वह ऊपर नहीं जा सकता।

योरप के भिन्न भिन्न देशों में—हज़ारों कोस दूर टापुओं तक में—जब एक लिपि का प्रचार है, तब हिन्दुस्तान में एक लिपि क्यों सम्भव नहीं? सर्वथा सम्भव है। जिनके धर्म्म-ग्रन्थ संस्कृत में हैं उनमें,

अर्थात् हिन्दुओं में, एक लिपि बहुत ही कम परिश्रम और प्रयत्न से प्रचलित हो सकती है। जिनकी भाषा संस्कृत से निकली हुई है, और जिनकी लिपि देवनागरी लिपि से मिलती हुई है, उनके एक लिपि, अर्थात् देवनागरी, स्वीकार करलेना तो और भी कम कष्टसाध्य है। डाक्टर ग्रियर्सन ने हिन्दुस्तान की भाषाओं और बोलियों के विषय में अभी हाल में जो एक बहुत बड़ा ग्रन्थ, कई भागों में, लिखा है, उसमें इस बात का हिसाब है कि हिन्दुस्तान के तीस करोड़ आदमियों में से कितने आदमी कौन भाषा बोलते हैं। जो लोग संस्कृत से सम्बन्ध रखनेवाली भाषायें बोलते हैं, उनका हिसाब इस तरह है—

हिन्दी	पूर्वी और पश्चिमी हिन्दी ...	६,२८,००,०००
	माध्यमिक हिन्दी ...	३,१२,००,०००
	पञ्जाबी ...	१,७०,००,०००
	राजस्थानी ...	१,९०,००,०००
		१२,१९,००,०००
बँगला ...		४,४६,००,०००
मराठी ...		१,८२,००,०००
गुजराती ...		१,००,००,०००
फुटकर भाषायें ...		२,००,००,०००
		९.२८,००,०००
	कुल ...	२१,४७,०००००

अर्थात् तीस करोड़ आदमियों में से साढ़े इक्कीस करोड़ आदमी संस्कृतमूलक भाषा बोलते हैं। शेष साढ़े आठ करोड़ तामील, तेलूगी आदि ऐसी भाषायें बोलते हैं जो संस्कृत से नहीं निकलीं। अर्थात् आर्य्यभाषा बोलनेवालों की अपेक्षा अनार्य भाषा बोलने वालों की संख्या सिर्फ़ एक तिहाई से कुछही अधिक है। अतएव इन्हीं लोगों को एक लिपि, अर्थात् देवनागरी, स्वीकार करने में विशेष कठिनता पड़ेगी। परन्तु एक लिपि से होनेवाले लाभों का विचार करके इस कठिनता को परिश्रमपूर्वक हल करलेना इन लोगों का परम कर्त्तव्य है। आर्य्यभाषा बोलनेवालों में से कोई बारह करोड़ आदमी देवनागरी लिपि को ही काम में लाते हैं। पञ्जाब में इस लिपि का प्रचार कुछ कम है। पर वहां गुरुमुखी लिपि काम में आती है; वह देवनागरी लिपि का ही अपभ्रष्ट रूपान्तर है। जो लोग अरबी से निकली हुई फ़ारसी लिपि लिखते हैं, उनकी संख्या, इस हिसाब को देखते, इतनी ही है जितना दाल में नमक। अतएव इस बातके मान लेने में कोई बाधा नहीं कि बारह करोड़ आदमी देवनागरी लिपि को काम में लाते हैं। बाक़ी नौ करोड़ आदमी बँगला, मराठी और गुजराती इत्यादि बोलने वाले हैं। इसमें से भी प्रायः दो करोड़ मराठी बोलनेवालों को छोड़ दीजिए, क्योंकि वे छापने में, और कभी कभी लिखने में भी, देवनागरी हो वर्णमाला काम में लाते हैं। अब सिर्फ़ सात करोड़ आदमी रहे जो थोड़े परिश्रम से देवनागरी वर्णमाला सीखकर उसे लिख पढ़ सकते हैं। इससे यह सिद्ध हुआ कि कोई चौदह करोड़ आदमी देवनागरी लिपि इस समय भी लिखते हैं और कोई सात करोड़ थोड़े परिश्रम से सीख सकते हैं। शेष नौ करोड़ आदमियों को इसे सीखने के लिए अधिक परिश्रम करना पड़ेगा। इसमें मुसल्मानों की भी संख्या शामिल है। उसे निकाल डालने से पिछले प्रकार के आदमियों की संख्या और भी कम हो जायगी।

गुजरात में जो लिपि काम में आती है उसे बने अभी सौ वर्ष भी नहीं हुए। यह एक गुजराती विद्वान् का मत है। देवनागरी और गुजराती लिपि में बहुत ही कम अन्तर है। देवनागरी लिपि को, दो तीन दिन, कुछ देर तक ध्यानपूर्वक देखने से, यह अन्तर मालुम होसकता है और बहुत थोड़े अभ्यास से गुजराती लिपि के जाननेवाले देवनागरी को पढ़ सकते हैं। गुजरात में जितनी संस्कृत की पुस्तकें प्रचलित हैं वे प्रायः देवनागरीही में हैं। पुस्तकों और समाचारपत्रों में प्रमाणस्वरूप जहां कहीं

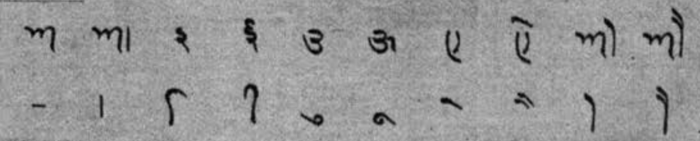
संस्कृत के वाक्य या श्लोक देने पड़ते हैं, वहां वे प्रायः देवनागरीही लिपि में दिये जाते हैं। फिर, गुजराती विद्वान् देवनागरी लिपि की विशुद्धता और एक लिपि के लाभ अच्छी तरह समझ गये हैं। अतएव उनकी प्रवृत्ति इस तरफ़ ख़ुदही हो रही है। आशा है, यदि इसी प्रकार इस विषय में चल-विचलता जारी रही तो गुजरात में बहुत जल्द इस लिपि का प्रचार प्रारम्भ हो जाय। पारसी लोगों की भी लिपि गुजराती है। पर उनका ध्यान, अभी तक, इस विषय की तरफ़ नहीं गया। उनके धर्म्मग्रन्थ पहलवी भाषा में हैं। अतएव उनको संस्कृत ग्रन्थ पढ़ने और उसके द्वारा देव-नागरी लिपि से पहचान करने का बहुत कम अवसर मिलता है। उनकी उदासीनता का यही कारण जान पड़ता है। कोई कोई तो कहते हैं कि पहले पहल पारसी लोगों ही ने गुजराती भाषा का प्रचार छापे में किया। क्योंकि सबसे पहले उन्होंने छापेख़ाने खोले। सुनते हैं, पचास साठ वर्ष पहले गुजराती लिपिका प्रचार सिर्फ़ महाजनी बही खाते में होता था, और कहीं नहीं। परन्तु पारसियों की संख्या बहुत कम है। यदि वे इस सर्वोपयोगी और देशकल्याणजनक लिपि को न स्वीकार करें तो भी विशेष हानि नहीं। परन्तु ऐसा वे शायद ही करें। जब गुजराती इस लिपि को काम में लाने लगेंगे तब पारसियों को लानाही पड़ैगा।

नागरी लिपि को काम में लाने के लिये बंगा-लियों के अग्रगामी होने की बड़ी आवश्यकता है। बँगला लिपि भी देवनागरीमूलक है। दोनों की वर्णमाला में अन्तर है। पर बहुत थोड़ा। पढ़े लिखे आदमी एक घण्टा रोज़ अभ्यास करने से अधिक से अधिक एक हफ़्ते में बँगला लिपि को अच्छी तरह सीख सकते हैं। और बँगला जानने वाले देवनागरी लिपि को उससे भी कम समय में जान सकते हैं। फिर, बङ्गाल में संस्कृत के बहुत से ग्रन्थ देवनागरी ही में छपते हैं। अतएव बङ्ग-वासियों के समुदाय का कुछ अंश इस लिपि से पहलेही से परिचित है। जो नहीं है वह भी बहुत थोड़े परिश्रम से परिचय प्राप्त कर सकता है। इससे आशा है कि विचारशील बङ्गवासी मान-नीय शारदाचरण मित्र के देशव्यापक-लिपि-विषयक प्रस्ताव को स्वीकार करके नागरी लिपि के प्रचार में अवश्य दत्तचित्त होंगे। सुनते हैं, इस परमावश्यक प्रस्ताव के फलवान् होने का चिन्ह भी शीघ्रही देखने को मिलेगा। कलकत्ते के "इण्डियन मिरर" नामक समाचारपत्र ने लिखा है कि "देवनागरी-विस्तारक परिषद्" नाम को एक सभा शीघ्रही बननेवाली है। वह एक पत्र या सामयिक पत्रिका निकालैगी जिसमें हिन्दी, बँगला, गुजराती, मराठी और तैलगू भाषाओं में लेख रहैंगे। पर लिपि सबकी नागरीही रहैगी। यह सभा एक देवनागरी परीक्षा भी जारी करैगी और जो बँगाली लड़के इसमें पास होंगे उनको सोने और चांदी के तमगे और प्रशंसापत्र भी वह देगी। बहुत ही अच्छा विचार है। एवं भवतु! तथास्तु!

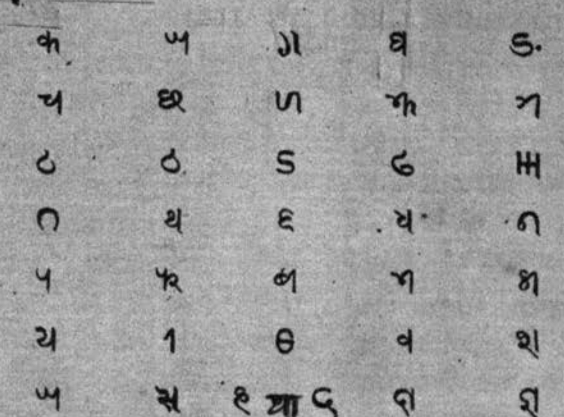
हमारी समझ में कलकत्ते से पांच भाषाओं में पत्र निकालने से कम लाभ होगा। जिस प्रान्त का जो पत्र होता है, उसीमें अक्सर उसका अधिक प्रचार होता है। अतएव ऐसे पत्र से विशेष करके बंगा-लियों ही को अधिक लाभ होने की सम्भावना है। और एकही साथ कई भाषायें सीखना ज़रा कठिन भी है। इससे यदि प्रत्येक प्रान्त में प्रान्तीय भाषा के साथ साथ सिर्फ़ हिन्दी भाषा में कोई पत्र या पत्रिका निकलै और लिपि दोनों की नागरी हो, तो विशेष लाभ हो। इससे नागरी लिपि सीखने में तो सुभीता होहीगा। उसके साथ हिन्दी भाषा सीखने में भी सहायता मिलैगी। अतएव एक लिपि का प्रचार हो जाने पर कुछ काल में एक भाषा के प्रचार का मार्ग भी प्रशस्त हो जायगा। एक लिपि के प्रचार के लिए गवर्नमेण्ट से सहायता पाने की पहलेही से इच्छा रखना व्यर्थ है। यदि

ग्रीव्ज़ साहब की कैथी ।

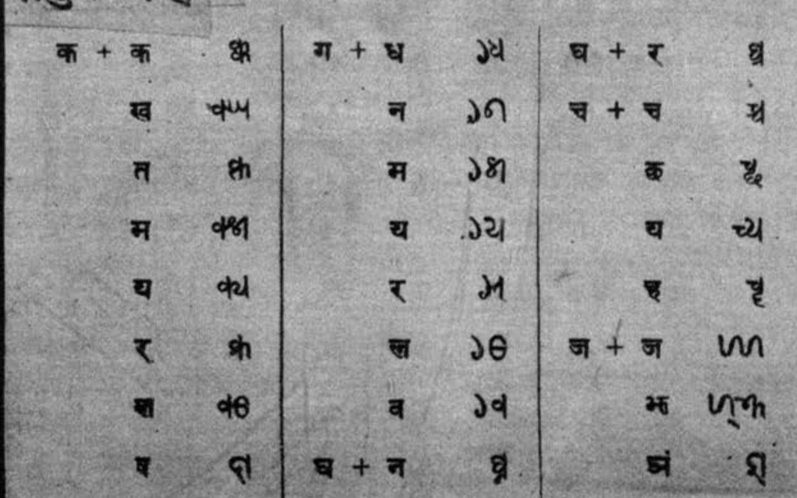
स्वर



व्यञ्जन



संयुक्त वर्ण



ज + य	ज्य	न + थ	न्थ	व + र	व्र
र	ज्र	द	न्द	श + च	श्च
व	ज्व	ध	न्ध	न	श्न
ट + ट	ट्ट	न	न्न	य	श्य
ठ	ट्ठ	म	न्म	र	श्र
त + क	त्क	य	न्य	व	श्व
त	त्त	प + त	प्त	ष + ट	ष्ट
थ	त्थ	न	प्न	ठ	ष्ठ
न	त्न	य	प्य	प	ष्प
प	त्प	र	प्र	म	ष्म
म	त्म	ल	प्ल	य	ष्य
य	त्य	ब + द	ब्द	स + क	स्क
र	त्र	ध	ब्ध	त	स्त
व	त्व	ब	ब्ब	थ	स्थ
स	त्स	य	ब्य	न	स्न
थ + य	थ्य	र	ब्र	प	स्प
द + ग	द्ग	भ + य	भ्य	म	स्म
द	द्द	र	भ्र	य	स्य
ध	द्ध	म + ह	म्ह	र	स्र
भ	द्भ	र +	र्	व	स्व
म	द्म	ल + प	ल्प	स	स्स
य	द्य	य	ल्य	ह + म	ह्म
र	द्र	ल	ल्ल	य	ह्य
व	द्व	ह	ल्ह	र	ह्र
न + त	न्त	व + य	व्य	व	ह्व

सर्व-साधारण की प्रवृत्ति इस तरफ़ हुई और इस लिपि का प्रचार थोड़ा बहुत होगया तो, उस समय, प्रारम्भिक शिक्षा की पुस्तकों को नागरी लिपि में छपवाने के लिये गवर्नमेण्ट से प्रार्थना करना असामयिक न होगा। यदि गवर्नमेण्ट को मालूम हो जायगा कि लोग इस लिपि को चाहते हैं और इसका प्रचार भी हो चला है तो वह प्रसन्नतापूर्वक इस प्रार्थना को मान लेगी। इस दशा में इस लिपि के सार्वदेशिक होने में कोई सन्देह न रह जायगा।

इस देश की और भाषाओं की अपेक्षा बँगला भाषा अधिक उन्नत है। इससे बँगालियों को अपनी लिपि के सहसा बदल डालने में सङ्कोच होना स्वाभाविक है। पर समाजहित भी कोई चीज़ है। देश-कल्याणचिन्ता भी कोई वस्तु है। देश के शुभचिन्तक अपना शरीर और सर्वस्व तक दे डालते हैं। पर एक लिपि के लिए इतने आत्मत्याग की ज़रूरत नहीं। ज़रूरत सिर्फ़ बँगला अक्षरों की जगह नागरी अक्षरों से काम लेने की है। इसमें कठिनता ज़रूर है और थोड़ी हानि होने की भी सम्भावना है। पर भावी लाभ के सामने यह कठिनता और यह लाभ स्वदेश-प्रेमियों के लिए तुच्छ है। यदि वे बँगला पुस्तकों और पत्रों को क्रम क्रम से नागरी लिपि में छापने लगेंगे तो बँगला सहित्य में भरा हुआ ज्ञानभाण्डार और प्रान्तवालों के लिए भी सुलभ हो जायगा। अन्य प्रान्तों में नागरी लिपि का प्रचार होने से भी यही बात होगी। प्रत्येक प्रान्त की अच्छी अच्छी पुस्तकों से देश भर को लाभ पहुंचेगा और धीरे धीरे सहानुभूति जाग्रत हो उठेगी। सहानुभूति से ऐक्य ज़रूर पैदा होगा। और ऐक्य के गुण कौन नहीं जानता? लिपि बदल देने से किसी पुस्तक या पत्र में लिखी गई बात का प्रभाव कम नहीं हो सकता। मराठी भाषा की पुस्तकें देवनागरी ही में प्रकाशित होती हैं। संस्कृत की अनेक पुस्तकें मदरास में तामील, तैलगू आदि में, और बंगाल में बँगला में छपकर प्रकाशित हो रही हैं। पर इस लिपिव्यावर्तन से उनको अणुमात्र भी हानि नहीं पहुँची।

देवनागरी लिपि के प्रचार में अनार्य भाषा बोलने और अनार्य लिपि लिखनेवालों को अधिक परिश्रम करना पड़ेगा। ऐसी भाषा और लिपि का प्रचार मदरास प्रान्त में है। पर इस प्रान्तवालों का भी संस्कृत से थोड़ा बहुत परिचय है। और संस्कृत के ग्रन्थ देवनागरी लिपि में वहां भी प्रचलित हैं। अतएव इन ग्रन्थों को जो लोग पढ़ सकते हैं उनको नागरी लिपि से काम लेने में बहुत सुभीता होगा। एक लिपि का होना इस देश के लिए बहुत आवश्यक और बहुत उपयोगी है। अतएव ऐसे काम के लिए श्रम, कष्ट और ख़र्च आदि का विचार एक तरफ़ रखकर उसे सिद्ध करना इस देश में रहने वाले प्रत्येक आदमी को अपना कर्तव्य समझना चाहिए। बहुतसी लिपियों के होने से अनेक हानियां हैं। इस दशा में एक प्रान्त वाले दूसरे प्रान्त की भाषा में छपी हुई पुस्तकों से लाभ नहीं उठा सकते। पर यदि सब प्रान्तों में एकही लिपि प्रचलित हो जाय तो एक प्रान्त के आर्यभाषा बोलनेवाले दूसरे प्रान्त की आर्य-भाषा की पुस्तकें सहजही में पढ़ सकें, और, ऐसी सब भाषायें संस्कृत-मूलक होने के कारण, उनका बहुत कुछ अंश वे समझ भी सकें। ऐसा होने से भिन्न भिन्न भाषाओं को अच्छी तरह जानने में भी बहुत सुभीता होगा।

अंगरेज़ों में से किसी किसी का मत है कि हिन्दुस्तान में रोमन अक्षरों का सार्वदेशिक प्रचार होना चाहिए। पर रोमन अक्षर यहां के लिए बिलकुलही अयोग्य हैं। यहां की भाषायें इन अक्षरों में शुद्धतापूर्वक लिखीही नहीं जा सकतीं। उनका अनुपयोगी होना इसीसे सिद्ध है कि गवर्नमेण्ट ने कचहरियों में कई बार उनके प्रचार का विचार किया। पर उनकी सदोषता और अनुपयुक्तता के कारण उसे अपने विचार को छोड़ना

पड़ा। अंगरेज़ अफ़सर इन अक्षरों से परिचित होते हैं। अतएव अपने सुभीते के लिये यदि वे इनके प्रचार का प्रस्ताव करें तो उससे सिर्फ़ उनकी स्वार्थ-परता सिद्ध होती है। और कुछ नहीं। जो सर्वथा निर्दोष है; जिसका प्रयोग हिन्दुओं के शास्त्रों में है; संस्कृत-साहित्य का अक्षय्य भाण्डार जिसकी बदौलत अभी तक थोड़ा बहुत विद्यमान है, उसको छोडकर और कोई वर्ण-माला हमारे लिए हितकर और उपयोगी नहीं।

सुनते हैं, बनारस-वासी पादरी यडविन ग्रीव्ज़ हिन्दी अच्छी जानते हैं। आपने हिन्दी में दो एक निबन्ध भी लिखे हैं। एप्रिल, मे और जून १९०५ के एकीकृत "हिन्दुस्तान रिव्यू" में आपने एक लेख अंगरेज़ी में प्रकाशित कराया है। आपकी राय में छापे के लिए तो देवनागरी वर्णमाला उपयोगी है। पर लिखने के लिए नहीं। आप कहते हैं कि देवनागरी लिखने में देरी लगती है। इसलिए लिखने में कैथी अक्षरों का प्रयोग होना चाहिए। आपकी राय में यदि कैथी अक्षरों का प्रयोग हो तो एक तिहाई समय की बचत हो और कागज़ पर से क़लम को बिना उठाये लिखने वाला उसे दौड़ाता चला जाय। कैथी के लिए आप इतनी बातों की आवश्यकता समझते हैं—

(१) प्रत्येक वर्ण का एकही निश्चित रूप हो।

(२) यदि दो वर्णों में समानता के कारण पढ़ने में भूल होने का डर हो तो दो में से एक का रूप कुछ बदल दिया जाय।

(३ संयुक्त-वर्ण बना लिये जायँ और उनसे काम लिया जाय।

(४) ह्रस्व और दीर्घ स्वरों का प्रयोग किया जाय।

आपके लेख के साथ कैथी स्वर, व्यञ्जन और संयुक्त वर्णों का एक नकशा छपा है। यह शायद आपही की कृति है। इसे हम भी अपने पाठकों के देखने के लिए प्रकाशित करते हैं।

हम पादरी साहब के प्रस्ताव के ख़िलाफ़ हैं। आपकी कैथी वर्णमाला में सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ऊपर पाई नहीं है। इस पाई के न लगाने ही से क्या एक तिहाई समय बच सकता है? हमारी समझ में यह भ्रम है। पहले तो किसी भाषा में एक से अधिक लिपियों का होना कोई तारीफ़ की बात नहीं। अंगरेज़ी में एक से अधिक लिपियों के होने से सीखनेवालों को—विशेष करके विदेशियों को—थोड़ी बहुत कठिनता अवश्य पड़ती है। इस बात को क्या पादरी साहब नहीं मानते? आपने जो संयुक्त वर्णों की सूची दी, वह अपूर्ण है। पहला ही वर्ण लीजिए। क + थ = क्थ (रिक्थ); क + व = क्व (पक्व); क + स = क्स (अक्स) को आपने छोड़ ही दिया है। इसी तरह और संयोगी वर्णों के रूप भी आपने नहीं दिये हैं। शायद आपने यह सूची नमूने के तौर पर दी हो; सब वर्णों का योग, जान बूझ कर, आपने न दिखाया हो। ख़ैर, कुछ भी हो, एक बात ज़रूर है कि सब संयोगी वर्णों का रूप निश्चित करने में संयुक्त वर्णों की संख्या बहुत बढ़ जायगी। इन सब वर्णों को लिखने का अभ्यास करना परिश्रम का काम है। जिस समय यह प्रस्ताव हो रहा है कि जिन प्रान्तों में देवनागरी लिपि प्रचलित नहीं है उनमें उसका प्रचार किया जाय, उस समय लिखने के लिए कैथी लिपि का प्रस्ताव करना मानों मूल प्रस्ताव में बाधा डालना है। क्योंकि लिखने में कैथी अक्षरों के प्रयोग के प्रस्ताव का अर्थ यह होता है कि यदि कोई बंगाली अथवा गुजराती, देवनागरी लिखने पढ़ने का अभ्यास करना चाहै तो उसे दो तरह की वर्णमालायें और बहुत से नये संयुक्त वर्ण सीखने पड़ें। इससे उसकी मेहनत दूनी हो जायगी और, सम्भव है, उन्हें सीखने का वह साहसही न करै। अतएव यदि कैथी के पक्ष में प्रबल प्रमाण दिये भी जासकें तो भी इस प्रस्ताव के अनुकूल यह समय नहीं।

फिर, क्या सचमुच ही कैथी की वर्णमाला ऐसी है जो बिना क़लम उठाये कोई उसे लिखता चला जाय? हमारी मन्दबुद्धि में तो वह ऐसी नहीं। उदाहरण के तौर पर देवनागरी और कैथी के कवर्ग

वर्णों का (नक़शा देखकर) मुक़ाबला कर लीजिए। देखिए, इन वर्णों में सिवा ऊपर की पाई के और कौन बड़ा फ़र्क है। तो क्या सिर्फ़ ऊपर पाई न लगाने ही से क़लम बराबर दैाड़ सकती है? हमारी समझ में नहीं। ग्रीव्ज़ साहब अपनी बात को सप्रमाण सिद्ध करें तो शायद हम समझ जांय। आपकी एक बात और भी हमारी समझ में नहीं आई। आपने ष और ख का कैथी में एकही रूप रक्खा है। यह क्यों?

यदि ऊपर पाई लगाने ही से किसी लेखक के समय का सर्वनाश होता हो, तो वह कागज़ के एक सिरे से दूसरे सिरे तक एक दमही एक लकीर खींच सकता है। पर क्या देवनागरी लिखने में सचमुचही कैथी से एक तिहाई अधिक समय लगता है? हमारी प्रार्थना है कि ग्रीव्ज़ साहब किसी अच्छे नागरी लेखक को किसी कैथी लिखनेवाले के साथ बिठलाकर इसकी परीक्षा करें। जिनको लिखने का अभ्यास है वे कैथी ही नहीं, घसीट उर्दू लिखनेवालों तक की बराबरी कर सकते हैं। किम्बहुना, कोई कोई उनको मात भी देदें तो असम्भव नहीं। पादरी साहब की नागरी लिपि देखने का तो सैाभाग्य हमें नहीं हुआ, पर परलोकवासी पिन्काट साहब की दो एक चिट्ठियां हमारे पास हैं। वे नागरी में हैं। उनको देखने से जान पड़ता है कि पिन्काट साहब ने एक एक अक्षर एक एक मिनट में लिखा होगा। यदि ऐसे लेखक कैथी लिखनेवालों से कोसों पीछे पड़े रह जायँ तो कोई आश्चर्य नहीं।

व्योम-विहरण।

जीवधारियों के रहने के केवल तीन स्थान हैं। जल, थल और आकाश। मनुष्य थलचारी है। इसलिये थल पर चलना उसके लिये स्वाभाविक है। परन्तु इस थल-विचरण के वेग को घोड़ा-गाड़ी, पैरगाड़ी और रेलगाड़ी चला कर उसने बहुत ही अधिक कर दिया है। यहां तक कि अब मोटर गाड़ी और बिजुली की रेल का आविष्कार करके उसने इस विचरण-वेग की और भी विशेष उन्नति की है। यह हुई थल की बात। जल में भी मनुष्य की शक्ति-सत्ता अखण्ड है। वहां भी उसकी बनाई हुई नाव, जहाज़, धुवांकश, बैटलशिप, क्रूज़र और टारपीडो इत्यादि विलक्षण विलक्षण जल-यान दैाड़ा करते हैं। जिसने, इस प्रकार, जल और थल, दोनों, में अपना आधिपत्य जमा लिया वह आकाश को भी वशीभूत करने की अभिलाषा रक्खैगा। इसमें आश्चर्यही क्या है? आश्चर्य तब होता जब वह व्योम-विहार करने का यत्न न करता। परन्तु जल और थल में जिसका आवागमन अविच्छिन्न है, उसके चित्त से व्योम में विचरण करने की वासना भला कब तक दूर रह सकती है?

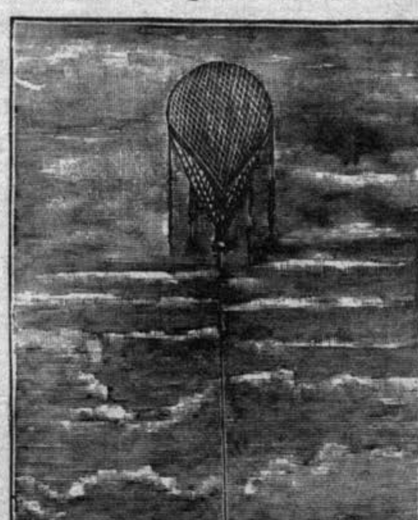
सरस्वती की किसी संख्या में "विमान और उड़नेवाले मनुष्य" शीर्षक एक लेख प्रकाशित हुआ है। उससे सूचित है कि विमान का किसी समय पूरा प्रचार था। विमान का उल्लेख पुराणों में अनेक स्थानों पर आया है। परन्तु ये पुरानी बातें हैं; इससे इनको जाने दीजिये। हां, हम यहां पर यह कह देना चाहते हैं कि ग्रीक और रोमन लोगों की पैाराणिक और ऐतिहासिक पुस्तकों में भी व्योम-यान की कथायें वर्णित हैं; और ऐसे मनुष्यों के नाम भी दिये हुये हैं जिन्होंने आकाश में उड़ने का यत्न किया था। सोलहवें शतक में एक इटली-निवासीने इँगलैण्ड के राजा चैाथे जेम्स के सामने आकाश में उड़ान करने का यत्न किया। उसने एक प्रकार के पंख बनाये थे। परन्तु उनसे कुछ काम न निकला और उड़ने के प्रयत्न में उसका पैर चूर हो गया। सत्तरहवें शतक में भी इँगलैण्ड, आस्ट्रिया और रूम में लोगोंने तरह तरह की कलें बनाकर आकाश-विहार करना चाहा; परन्तु किसीको

सफलता नहीं हुई। किसीका पैर टूटा; किसी-का सिर फूटा; कोई मरा; कोई जन्म भर के लिए लँगड़ा हुआ। इस पर भी व्योम-विहार की इच्छा मनुष्यों के मन से दूर नहीं हुई। समय समय पर प्रयत्न होतेही रहे।

अठारवीं शताब्दी में पहले पहल व्योम-विहारिणी विद्या में सफलता हुई। फ्रांस में लायन नगर से ४० मील दूर एनोने नामक क़सबे में स्टेफयन मॉंटगोफ़ियर और जोज़ेफ़ मॉंटगोफ़ियर नामधारी दो भाई रहते थे। वे क़ागज़ी थे। उनका व्यवसाय क़ागज़ बनाना और बेचना था। एक दिन आकाश में बादलों को लटका देख उनके जीमें आया, कि यदि बादलों के समान कोई चीज़ किसी थैले में भर दी जाय, तो वह भी आकाश में उड़ सकै; और अपने साथही उस थैले को भी वह उड़ा ले जाय। इसकी परीक्षा के लिए उन्होंने नीचे धुवां करके ऊपर एक पतला थैला लटकाया। थैला धुवें से भर जाने पर सचमुचही ऊपर को कुछ दूर उड़ गया। इस परीक्षा ने उनके ख़याल को सच्चा साबित किया। इससे उत्साहित होकर ५ जून, १७८३ ईसवी, को १०५ फुट परिधि का एक कपड़े का गोला बनाकर, और उसमें धुवां भर कर, सर्वसाधारण के सामने उन्होंने उसे उड़ाया। वह कोई १० मिनट तक आकाश में रहा और डेढ़ मील दूर जाकर गिरा। यह पहला ग़ुब्बारा है। इसकी क्रम कमसे उन्नति होने लगी। पहले इसमें एक भेड़ी, एक मुर्ग़ा और एक बतक—ये तीनों जीव—रखकर उड़ाये गये; फिर मनुष्य भी बैठकर उड़ने लगे। अब, इस समय, ग़ुब्बारे और ग़ुब्बारेबाज़ों की इतनी अधिकता है कि इस देश में भी इनका खेल होता है। इस देशवाले भी इनमें बैठकर उड़ते हैं।

ग़ुब्बारे प्रायः रेशम के बनाये जाते हैं। पहले इनमें धुवां भरा जाता था; फिर हाईड्रोजन (जल-कर) गैस भरा जाने लगा; परन्तु अब कोयले के गैस से काम लिया जाता है। उतरते समय ग़ुब्बारे का वेग कम करने के लिए, और उसके फट जाने पर, नीचे सुरक्षित उतरने के लिये उसके साथ पैराच्यूट नामक एक छत्तरी रहती है। पैराच्यूट सहित ग़ुब्बारे को बहुतोंने प्रत्यक्ष देखा होगा।

ग़ुब्बारे की विद्या ने बहुत उन्नति की है। उसमें बैठकर लोग दूर दूर की यात्रा आकाश की राह से, करते हैं; आटलाण्टिक सागर तक को पार कर जाना चाहते हैं; और आकाश में आठ मील तक ऊपर चले जाते हैं! अब इतने इतने बड़े ग़ुब्बारे बनते हैं कि हज़ारों घनफुट गैस उनमें भरी जा सकती है। इस व्योम-विहार में अनेक दुर्घटनायें भी होती हैं; परन्तु साहसी मनुष्य उड़ने से नहीं डरते, और दुर्घटनाओं के रोकने का नित्त नया प्रबन्ध करते हैं। नई नई युक्तियों के द्वारा विद्वानों ने ग़ुब्बारे के द्वारा आकाश विहार की दुर्घटनाएं अब बहुत ही कम कर दी हैं। अब अनेक मनुष्य मेघमण्डल को फ़ोड़ कर ऊपर चले जाते हैं; और सैकड़ों प्रकार की वैज्ञानिक परीक्षाएं करके विज्ञान की उन्नति साधन करते हैं। ग़ुब्बारों से युद्ध में भी बहुत बड़ा काम



निकलता है। १८७०-७१ में फ्रांस की राजधानी पेरिस बहुत दिन तक जर्मनवालों के द्वारा घिरी

महाराजा जंग बहादुर के छः [स्वर्गवासी] भाइयों का चित्र ।



जनरल बमबहादुर राना । जनरल बद्रीनरसिंह राना बहादुर । जनरल कृष्ण बहादुर ।

महाराजा सर रणउद्दीपसिंह राना बहादुर, के० सी० एस० आई । जनरल जगत शमशेर जंग राना बहादुर । जनरल धीरशमशेर जंग राना बहादुर ।

रही। उस समय ६४ .गुब्बारों से काम लिया जाता था। यदि .गुब्बारे न होते तो पेरिस की दशा बहुत हो भयङ्कर रूप धारण करती। इन्हींके द्वारा बाहर के समाचार पेरिस में और पेरिस के समाचार बाहर भेजे जाते थे। ट्रांसवाल की लड़ाई में भी .गुब्बारों से बहुत काम लिया गया था। रूस-जापान की लड़ाई में भी .गुब्बारों से काम लिया जा रहा है। यह विद्या अब सेना के अधिकारियों को भी सिखलाई जाती है; और इनकी कम्पनियां भी योरप और अमेरिका के प्रसिद्ध प्रसिद्ध नगरों में स्थापित होगई हैं। बहुतेरों ने तो गुब्बारेबाज़ी अपना रोज़गारही बना रक्खा है। बहुतेरे मनोविनोद के ही लिये .गुब्बारों में व्योम-विहार करते हैं। अभी कुछ दिन हुए, पेरिस से बड़े बड़े चार .गुब्बारों में कई विज्ञानी और कई राजवंशीय पुरुष उड़े थे। उन्होंने छ सात सौ मोल की यात्रा, आकाशमार्ग से, केवल कुछ घण्टों में समाप्त की थी!

पानी के ऊपर जब लकड़ी तैरने लगती है तब वह कुछ उसके ऊपर रहती है, कुछ नीचे। अर्थात् कुछ पानी को, उसके स्थान से हटाकर, उस स्थान को वह लकड़ी स्वयं ले लेती है। इसका यह अर्थ हुआ कि प्रवाही पदार्थों में, उसके जितने अंश को हटा कर, कोई पदार्थ उसका स्थान ले लेता है, उसका वज़न उस हटाये हुए अंश के बराबर होता है। यदि ऐसा न होता तो लकड़ी कभी न तैरती। जब दो पदार्थों का बोझ बराबर होता है तभी यह बात सम्भव है। क्योंकि हम देखते हैं कि जो वस्तु पानी से अधिक वज़नी है, वह उसके नीचे चली जाती है। जिन नियमों के अनुसार लकड़ी पानी पर तैरती है, उन्हीं नियमों के अनुसार .गुब्बारा हवा में तैरता है। पृथ्वी के पास जो हवा है वह ऊपर की हवा से अधिक घनी है; अतएव अधिक वज़नी है। ऊपर की हवा के तह नीचे की हवा के ऊपर रहते हैं; इससे नीचे की हवा पर विशेष बोझ पड़ता है; अतएव वह अधिक वज़नी होती है। .गुब्बारे में जो गैस भरी जाती है वह नीचे की हवा से हलकी होती है; इस लिए वह उसके ऊपर चली जाती है। जहां तक गैस और हवा का तुल्यगुरुत्व नहीं होता, तहां तक .गुब्बारा ऊंचा उठता है। और जहां हवा और .गुब्बारे का गुरुत्व—बोझ—एक हो जाता है, वहां से आगे वह नहीं बढ़ सकता। .गुब्बारों के सम्बन्ध का यह एक स्थूल नियम है।

जबसे .गुब्बारे की उत्पत्ति हुई, और जबसे तत्सम्बन्धी नियमों का ज्ञान हुआ, तबसे अनेक मनुष्य आकाश-विहारिणी कलों के निर्म्माण में व्यग्र हो रहे हैं। फ्रांस, इँगलैण्ड, जर्मनी और अमेरिका आदि में व्योम-विहारिणी-विद्या-विषयक अनेक सभाएं हैं। उनके सभासद इस विषय में नाना प्रकार के खोज करते रहते हैं; विविध भाँति की परीक्षायें करते हैं; व्योम-विहारिणी कलों के नमूने बनाकर दिखलाते हैं; और समय समय पर नई नई बातों का ज्ञान प्राप्त करके उन पर निबन्ध लिखते हैं। परन्तु अभी तक इस विषय में पूरी सफलता नहीं हुई। विज्ञानियों का मत है कि .गुब्बारे से विमान का काम नहीं निकल सकता। चाहै उसमें जितनी उन्नति हो; परन्तु उस पर सवार होकर यथेच्छ आकाश-भ्रमण असम्भव है। व्योम-विहरण के लिये ऐसा रथ, ऐसा यान, ऐसा पेंच चाहिये जिसे यथेच्छ ऊंचा नीचा कर सकें; जिसका वेग यथेच्छ न्यूनाधिक कर सकें; जिसे यथेच्छ दिशा की ओर ले जा सकें; और जिसे यथेच्छ ज़मीन पर उतार सकें। व्योम-विहार के लिए ऐसी कल होनी चाहिये जो हवा से अधिक वज़नी हो। तभी हवा में यथेच्छ विहार करना सम्भव हो सकता है। आज तक अनेक प्रयत्न व्योम-विहरण के हो चुके हैं, और अनेक मनुष्यों ने अपने प्राण भी इस उद्योग में खोये हैं। तथापि यह उद्योग बन्द नहीं है; बराबर जारी है। कुछ दिन से इसमें सफलता के लक्षण भी दिखाई दे रहे हैं। बड़े बड़े अध्यापक और

बड़े बड़े विज्ञानियों का मत है कि आकाश में इच्छानुसार उड़ना बहुत कठिन समस्या है। परन्तु जब उद्योगी विद्वान देखते हैं कि मनुष्य से सैकड़ों दरजे हीनबुद्धि वाले पक्षी ख़ूब उड़ते हैं; पक्षियों को जाने दीजिए, मक्खी के समान छोटे छोटे पतङ्ग तक व्योम-विहार करते हैं; तब उनसे नहीं रहा जाता। वे कहते हैं कि मनुष्य के समान श्रेष्ठ प्राणी को, उद्योग और परिश्रम से, व्योम-विहरण विद्या अवश्य साध्य हो सकती है। अतएव कुछ काल से उन्होंने उड़नेवाले जीवों के पंखों की बनावट और उनके उड़ने के प्रकार आदि पर विचार आरम्भ किया है। वे इस बात की खोज में हैं कि वायुविहारी जीवों में क्या विशेषता है; उनके पंखों में क्या विशेषता है; और उनके उड़ने की रीति में क्या विशेषता है। उन्होंने यह निश्चय कर लिया है कि कोई भी उड़ने की कल जब तक पक्षियों के पंखों की बनावट के नियमानुकूल न तैयार होगी, तब तक वह कदापि न उड़ सकैगी। उड़ने की कल हवा से वज़नी होनी चाहिए और उसे हवा के ऊपर इस प्रकार तैरना चाहिये जैसे मनुष्य पानी पर तैरता है।

१६७० ईसवी में, पहले पहल बोरेली नामक विद्वान् ने, एक कृत्रिम चिड़िया बनाई। उसके पंखों की बनावट पर उसने एक निबन्ध लिखा और उनकी रचना का वर्णन करके उसने यह बतलाया कि इसी प्रकार के पंखों से वायु-विहारिणी कल आकाश में उड़ सकैगी। यह चिड़िया देखनेही की थी; उड़ी नहीं। परन्तु उस समय से लोगों का चित्त इस ओर विशेष आकर्षित हुआ और अध्यापक ऐटीअ्रू जिरार्ड, पिनाड आदि ने भी इस विषय में कई लेख लिखे उड़ने की कल का पहला नमूना सर जार्ज केली ने १७९६ ई० में बनाया। यह एक लड़कों का खेल है; परन्तु व्योम-विहारिणी कलों का आरम्भ यहीं से हुआ है।

हनसन नामक एक यञ्जिनियर ने एक और ही युक्ति के आश्रय पर उड़ने की एक कल बनाई। इसकी बड़ी तारीफ़ हुई। परन्तु इससे भी अच्छी कल १८६८ ईसवी में स्ट्रिंगफ़ेलो साहब ने बनाकर १५०० रुपए का इनाम पाया। ग्रेट-ब्रिटेन की व्योम-विहारिणी सभा की प्रदर्शनी में यह कल दिखलाई गई। इसे लोगों ने बड़े आश्चर्य से देखा। इसमें तीन पट थे; पीछे की ओर पक्षियों की सी पूंछ थी जो पतवार का काम देती थी; और दो कीलक थे जिन्हें एक छोटा सा यञ्जिन घुमाता था। यञ्जिन का बल ½ घोड़े के बल के बराबर था। इस कल के तीनों पटों का विस्तार २८ वर्ग फ़ुट था। यह कल एक बन्द मकान के भीतर एक तारके ऊपर दौड़ती हुई दिखलाई गई थी। इसके बनानेवाले का कथन था कि यह बाहर आकाश में भी उड़ सकती है; परन्तु आकाश में इसे किसी ने उड़ते नहीं देखा। विज्ञानियों और यञ्जिनियरों का मत है कि आकाश में उड़ने के यह सर्वथा अयोग्य थी।

इसी प्रकार अनेक विज्ञानियों ने अनेक यन्त्र आज तक निर्म्माण किये; परन्तु पूरी पूरी सफलता किसीको भी नहीं हुई। तथापि, अब ऐसे लक्षण देख पड़ने लगे हैं, कि कुछ दिनों में पवन-नौकायें और वायु-पोत यथेच्छ आकाश में विहार करने लगैंगे। अमेरिका, फ्रांस, जर्मनी और ग्रेट-ब्रिटेन में, इस समय, बड़े बड़े विज्ञानी वायु-विहारिणी कलें बनाने में प्रवृत्त हैं। अभी, हाल में, जो परीक्षाएं इन कलों की हुई हैं, उनसे पूरी पूरी आशा होती है कि पृथ्वी की तरह आकाश में भी शीघ्रही गाड़ियां दौड़ैंगी। [असम्पूर्ण

लोमहर्षण शारीरिक दण्ड।

१८५७ ईसवी के पहले, इस देश में, ईस्ट इण्डिया कम्पनी का प्रभुत्व था। उस समय, यहां, कहीं कहीं, बड़ेही भयानक और हृदयविदारी

दण्ड दिये जाते थे। अपराधियों को, और यदा कदा निरपराधियों की भी शरीर-दुर्गति स्वदेशी राज्यों में तो होती ही थी; परन्तु, कहीं कहीं, अंगरेज़ी-अर्थात् ईस्ट इण्डिया कम्पनी के स्वाधीन —राज्य में भी होती थी। मदरास हाते में शारीरिक दण्ड की भीषणता और प्रदेशों की अपेक्षा बहुत ही अधिक थी। इस लिए गवर्नमेण्ट ने, १८५४ ईसवी में, इसकी जाँच करने के लिए एक कमीशन नियत किया था। इस कमीशन ने अपनी जांच का फल एक रिपोर्ट में सन्निविष्ट कर के, १५ एप्रिल १८५५ को, उसे गवर्नमेंट को भेजा। इस रिपोर्ट में जिस प्रकार के घोर शारीरिक दण्डों का वर्णन है उस वर्णन ही को सुन कर, औरों की तो बात ही नहीं, नादिरशाह और चीतू पिण्डारी के समान पाषाणहृदय मनुष्यों का भी कलेजा दहल उठेगा। इस रिपोर्ट में वर्णन किये गये अमानुषिक दण्डों की नामावली देकर हम पाठकों के कोमल हृदय को पीड़ा नहीं पहुँचाना चाहते। हम, यहां पर, उनसे कम यातना-जनक कुछ शारीरिक दण्डों का उल्लेख करेंगे।

मदरास में ट्रावनकोर एक प्रसिद्ध राज्य है। वहां इस समय सभ्यता का बड़ा ज़ोर शोर है। विद्या की भी वहां ख़ूब उन्नति है। परन्तु, किसी समय, वहां मनुष्यों को बड़े ही कठोर दण्ड दिये जाते थे। १८४८ ईसवी में, एक प्रख्यात अंगरेज़ ने, वहां के शारीरिक दण्डों की जो सूची प्रकाशित की थी उसको देखने से विदित होता है कि, उस समय, ट्रावनकोर में नीचे लिखे अनुसार दण्ड दिये जाते थे।

(१) हाथ पीछे रस्सी से बांध दिये जाते थे, और बांध कर खींचे जाते थे। खिंचाव धीरे धीरे बढ़ाया जाता था, यहां तक कि हाथों का उखड़ना ही भर बाक़ी रहता था। इधर, इस तरह, हाथ खींचे जाते थे; उधर गरदन झुका कर उस पर कोई बहुत बड़ी वज़नी चीज़ रख दी जाती थी; या बांध कर लटका दी जाती थी। (२) शरीर के अवयव—हाथ, पैर, कान, अँगुलियां आदि—मरोड़े जाते थे। इस मरोड़ और खींचाखींच में, कभी कभी, हड्डियां टूट जाती थीं; या अपनी जगह से हट जाती थीं। (३) दो लकड़ियां ली जाती थीं। वे दोनों, एक ओर, ढीली बांध दी जाती थीं। उनके बीच में अँगुलियां रख कर दबाई जाती थीं। इस दबाव की सीमा न थी। दबानेवाला यथेच्छ बल लगाता था। इस दण्ड में चिपटी होकर अँगुलियों से ख़ून बह निकलना साधारण बात थी। (४) कांटेदार पतली छड़ियों से पिटाई होती थी। (५) दो स्त्रियों के लम्बे केश खोल कर, उनके छोर एक दूसरे से बांध दिये जाते थे; और उन बँधे हुए केशों के बीच से एक भारी पत्थर या और कोई वज़नी चीज़ लटका दी जाती थी। (६) लोहे की एक लम्बी छड़ में, एक ओर दो चार छल्ले रहते थे। हर एक छल्ले में एक पैर डाल दिया जाता था। तब उस छड़ का दूसरा किनारा, किसी दीवार या लकड़ी के कुन्दे में, छेद कर के, उसके भीतर से खींचा जाता था। खींचने में अधाधुन्ध बल लगाया जाता था। इस तरह, उस छड़ का छल्लावाला छोर दीवार या लकड़ी के कुन्दे के पास आ जाता था; और सबके पैर इकट्ठे होकर कटने लगते थे। (७) घण्टों हाथों के बल, किसी पेड़ या कड़ी से आदमी लटकाये जाते थे। (८) लटकते हुए के नीचे आग जलाई जाती थी और आग में अत्यन्त कड़ुई लाल मिर्च डाल कर उसके असहनीय धुवें से आंख, नाक और गले को उत्कट पीड़ा पहुंचाई जाती थी। (९) एक विशेष प्रकार की लकड़ी के भीतर पैर डाल कर आदमी काठ मार दिये जाते थे। (१०) कोठरी में डालकर भीतर ख़ूब धुवां किया जाता था; और बाहर किवाड़े बंद कर दिये जाते थे। (११) लाल गरम चिमटे या सँड़सी से गुप्ताङ्ग दागे जाते थे। (१२) दस पांच गोबरैले (कीड़े) नारियल के आधे छिलके में रखकर, नाभि पर बांध दिये जाते थे। वे मास काट कर धीरे धीरे आँतों में प्रवेश करने की

चेष्टा करते थे; और अपराधी को मरणान्त वेदना पहुंचाते थे। (१३) हाथ में, कलाई से लेकर गांठ तक, नमक और रेत, देर तक, मलाजाता था। फिर वहीं, नारियल की सूखी पत्ती के डण्ठुर खूब कड़े कर के बांधे जाते थे। कुछ देर हो जाने पर, वे डण्ठुर, एक एक कर के, खींचे जाते थे। खींचने से मास कटता चला आता था; और नमक और रेत के संयोग से अपराधी को असह्य यन्त्रणा होती थी।

किसी बात को क़बूल कराने, मालगुज़ारी अथवा लगान वसूल करने, और रिश्वत पाने के लिये ऐसी अमानुषी दण्डविधि का प्रयोग होता था। यह भारत के अत्यन्त दक्षिण में एक देशी राज्य की बात हुई। अब भारत के उत्तर कम्पनी बहादुर के राज्य की भी लीला सुन लीजिये।

१८५४ ईसवी में हेनरी ब्रेरेटन साहब लुधियाना में डेप्युटी कमिश्नर थे। उस समय आपको नौकरी करते १८ वर्ष हो गये थे। उनके किये हुये न्याय और फ़ैसले के ख़िलाफ़ पञ्जाब के चीफ़ कमिश्नर सर जान लारन्स को कई आदमियों ने अरज़ियां दीं। चीफ़ कमिश्नर ने इन अरज़ियों को सतलज के उस पारवाली देशी रियासतों के सुपुरिण्टेण्डेण्ट बार्नस साहब के पास तहक़ीक़ात के लिये भेजा। बार्नस साहब ने, मौक़े पर जाकर, अच्छी तरह तहक़ीक़ात की; और इस मामिले की एक लम्बी रिपोर्ट भेजी। इसी रिपोर्ट में से हम कुछ बातें, बार्नस साहब ही के शब्दों में, भाषान्तर रूप, नीचे देते हैं—

"डेप्युटी कमिश्नर ब्रेरेटन साहब के साथ मैंने लुधियाने का जेल देखा। वह क़ैदियों से भरा हुआ था। लोगों ने मुझे घेर लिया, और उनपर जो अन्याय और ज़बरदस्ती हुई थी उसकी शिकायतें पेश कीं। मैंने सुना कि ब्रेरेटन साहब ने जासूस रक्खे थे। उनको गवर्नमेण्ट से तनख़्वाह मिलती थी। मुसाहबख़ां तहसीलदार और उसके भाई फ़तेहजङ्ग परवानेनवीस के ख़िलाफ़ अनेक शिकायतें हुईं। एक क़ैदी ने कहीं कह दिया कि सरदार चिम्मनसिंह के यहां चोरी का माल है। यह सरदार कुनैच का जागीरदार है; और इज्ज़तदार आदमी है। ब्रेरेटन साहब की आज्ञा से फ़तेहजङ्ग पुलिस लेकर सरदार के घर पर पहुंचा। सरदार की उसने बेइज़्ज़ती की। डेप्यूटी कमिश्नर भी पीछे से वहां आये। चिम्मनसिंह का घर गिरा दिया गया; फ़र्श खोद डाला गया; और सारा असबाब लुधियाने को भेज दिया गया। इसी समय वहां के आठ इज्ज़तदार ज़मीदार भी पकड़े गये। उनके बेड़ियां डाल दी गईं; और वे फ़तेहजङ्ग के सिपुर्द हुए। तीन महीने तक वे क़ैद रहे; और उनकी दुर्दशा की गई। मेरी समझ में वे बिलकुल निरापराध हैं। वे फ़तेहजङ्ग के निज के घर में क़ैद रक्खे गये थे। उन पर जो बीती उसका वे वर्णन नहीं कर सकते। उनके सिर के बाल उनके पैर को बेड़ियों से बांध दिये गये थे। उनकी कुहनियों में मेख़ें ठोक दी गई थी; और दूसरे मर्म्म-स्थलों की भी यही दशा की गई थीं। रामदत्त और दत्तू की कुहनियों को मैंने ख़ुद देखा; अभी तक उनमें मेख़ों के निशान बने हैं। जिस मनुष्य ने इन लोगों को यह दारुण दण्ड दिया उसका नाम अलाबख़्श है; वह फ़तेहजङ्ग का नौकर है। इन दोनों आदमियों को ऐसी सख़्त चोट पहुंची कि उनको जेल के अस्पताल में भेजना पड़ा। वहां, कई महीने में, उनके घाव आराम हुए"।

"जेल देखकर और शिकायत करनेवालों के बयान लिख कर मैं हवालात देखने गया। वहां मुझे १५ आदमी क़ैद मिले। महीनों से वे वहां पड़े थे; परन्तु दो को छोड़ कर, औरों का बयान तक न लिखा गया था। ६ आदमी एक चोरी में शामिल रहने के शुभा में पकड़े गये थे। अकेले एक जासूस के कहने से फ़तेहजङ्ग ने उनको पकड़ा था। उनमें से एक का नाम देवासिंह है। वह कहता है कि फ़तेहजङ्ग ने मार मार कर उससे अपराध

स्वीकार कराया है। हरनामसिंह कहता है, कि वह फ़तेहजङ्ग के घर पर क़ैद था। वहां उस* **में मेख़ ठोंक दी गई थी; फिर, वह अस्पताल के। भेज दिया गया था। मैंने उसे अपनी आंखों से देखा। उसके ख़िलाफ़ कोई सबूत नहीं। उसकी मा रूपा कहती है कि फ़तेहजङ्ग और अलाबख़्श ने उसे नङ्गा करना चाहा। उसे अगस्त के महीने में धूप में उन्होंने खड़ा रक्खा और पीने के। पानी तक न दिया। उसके मुँह पर फ़तेहजङ्ग ने मैले का तोबड़ा बाँध दिया। वह यह भी कहती है कि उसका घर भी खोद डाला गया और जो रुपया पैसा निकला वह फ़तेहजङ्ग उठा ले गया"।

बार्नस साहब ने ऐसेही अनेक राक्षसी दण्डों की बातें लिखी हैं। उस ज़माने में, मेख़ ठोंक देना, और लाल मिरच, तथा मैले का तोबड़ा चढ़ा देना तो बहुत साधारण बात थी। फ़तेहजङ्ग केवल एक परवाने-नवीस था। परन्तु डेप्यूटी कमिश्नर साहब ने उसे निःसीम शक्ति दे रक्खी थी। वह जहां चाहता था जाता था; जो चाहता था करता था; उसका घर ही हवालात का काम देता था; उसकी बैठक ही कचहरी थी। ब्रेरेटन साहब ने अपनी रिपोर्ट चीफ़ कमिश्नर को भेजी; चीफ़ कमिश्नर ने लार्ड डलहौसी को लिखा; लाट साहब ने, विलायत में, कोर्ट आफ़ डाईरेकृर्स को ख़बर दी। तब कहीं डिप्यूटी कमिश्नर साहब की न्यायपरायणता का न्याय हुआ। कोई दो वर्ष में विलायत से हुक्म निकला कि ब्रेरेटन साहब डेप्यूटी कमिश्नर से असिस्टण्ट कमिश्नर कर दिये जायँ। तब तक उन्होंने तीन वर्ष की "फरलो" ले ली। फ़तेहजङ्ग ८ वर्ष के लिये जेल भेजा गया; और उसका भाई डिसमिस कर दिया गया। जेलर ने केवल ज़बानी हुक्म से निरपराध लोगों को जेल में ठूंसा था, उसको केवल "धमकी" मिली। और जेल के डाकृर साहब, जिन्होंने उन बेचारे सिक्खों की चुपचाप दवा दारू की थी, उनके लिए भी "धमकी" ही काफ़ी समझी गई।

इस समय भी, कभी कभी, अख़बारों में पुलिस के अमानुषी कर्म्मों की कथा सुनने को मिलती है; परन्तु गदर के पहले के भीषण दण्डों का विचार करके हृदय कँप उठता है। अच्छा हुआ, बृटिश गवर्नमेण्ट ने इस देश का राज्यसूत्र, ईस्ट इण्डिया कम्पनी से, अपने हाथ में ले लिया।

वाजिदअली शाह के ज़माने में अवध के डाकू, लुटेरे और बाग़ी तअल्लुक़ेदार भी बहुतही भयङ्कर शरीर-दण्ड देते थे। उनका ज़िकर वाजिदअली-शाह के चरित में आवैगा। यह चरित यथासम्भव शीघ्र छपैगा।

जापान की जीत का कारण।

लोगों का ख़याल है कि जपानकी उन्नति का आरम्भ हुए केवल ४० वर्ष हुए। परन्तु जापान के भूतपूर्व मन्त्री कौण्ट ओक्यूमा इस बात को नहीं स्वीकार करते। वे कहते हैं कि जापान की सभ्यता १५०० वर्ष की पुरानी है। १५०० वर्ष पहले जापान ने चीन, कोरिया और हिन्दुस्तान से सभ्यता सीखी। पर उस सभ्यता को जापान ने अपने अनुकूल बना लिया। अर्थात् जिस रूप में उसने पाया उस रूपमें उसे न रखकर अपने देश की अवस्था के अनुसार उसने उसमें फेर फार कर दिया। धर्म्म, साहित्य, नीति और कला कौशल आदि सब विषयों में जापान ने इस तरह के फेरफार किये।

जब जापान में विदेशियों ने पैर रक्खा तब उसने उन्हें वैसा करने से मना किया। पर इसमें वह असमर्थ हुआ। तब इस असमर्थता का वह कारण ढूंढ़ने लगा। उसके ध्यान में आया कि विदेशियों को बलपूर्वक निकालना कठिन है। यदि दो एक दफ़े वे निकाल भी दिये जांयगे तो न मानेंगे।

वे फिर से आवेंगे। अतएव जिन बातों में ये लोग हमसे बढ़े हुए हैं उन्हें हमें सीखना चाहिए। उनके समान श्रेष्ठ होने ही में जापान का कल्याण है। यह निश्चय करके जापान ने जातिभेद को उठा दिया। सामाजिक दृष्टि से किसान और प्रधान मन्त्री एक हो गये। सब जापानी एक सामाजिक सूत्र में बँध गये। परस्पर शादी विवाह होने लगे। पहले वे समझते थे कि जो कुछ जापानी है वह सभी श्रेष्ठ है, और जो कुछ विदेशी है वह सभी बुरा है। इस अविचार को उन्होंने दूर कर दिया। उनको इस बात पर दृढ़ विश्वास हो गया कि पुरानी सभ्यता का अब समय नहीं रहा।

इसका फल यह हुआ कि छोटे छोटे तअल्लुक़ेदारों ने अपनी अपनी तअल्लुक़ेदारी को राजा के सिपुर्द करके राजा की शक्ति बढ़ादी। हर वर्ष हज़ारों विद्यार्थी विदेश में विद्योपार्जन के लिए जाने लगे। ६ वर्ष की उमर होने पर लड़के लड़कियों के मदरसे जाने का क़ानून बनगया। विदेश से जैसे जैसे जापानी युवक विद्योपार्जन करके लौटने लगे, तैसेही तैसे जापान में विदेशी रीति की सभ्यता का प्रचार प्रारम्भ हुआ। जापानी लोग रेल, तार, डाक, कल, कारख़ाने, स्कूल, कालेज, वाणिज्य आदि सब बातों के पीछे पड़ गये और यथाशक्ति उनमें उन्नति भी करने लगे। जहाज़ चलाना और बनाना भी उन्होंने सीखा। पश्चिमी रीति के अनुसार सेना भी उन्होंने अपनी दुरुस्त कर ली। जब तक सब बातें सिखलाने के लिए योग्य जापानी नहीं मिले तबतक विदेशियों से काम लिया गया। पर जब विद्वान् जापानियों की संख्या बढ़ गई तब विदेशी दूर कर दिये गये।

जापान ने प्रतिज्ञा करली कि विदेशियों में जो जाति सबसे अच्छी दशा में है उसकी बराबरी किये बिना हम न रहेंगे। इस प्रतिज्ञा को उसने तीस चालीस वर्ष में पूरी कर दिखाया। पर विदेशियों की नक़ल करने में जापान ने अपना जापानीपन नहीं छोड़ा। जो बातें उसे औरों में अनुकरणीय जान पड़ीं उनका अनुकरण उसने जापानी ढंग से किया। अपनी जातीयता—अपना स्वदेश-प्रेम—उसने नहीं जाने दिया। पश्चिमी सभ्यता को उसने जापानी साँचे में ढाला। जापान की अनुकरणशीलता में यही विशेषता है। इसीके कारण जापान फिर भी जापान बना हुआ है। पृथ्वी के प्रबलतम देश रूस पर जापान की जो यह जीत हुई है उसके ये सभी कारण हैं। पर ये कारण साधारण हैं। इस जीत का प्रधान कारण जापान की विज्ञान-वृद्धि है। यदि जापान में अनेक प्रकार की विज्ञान-शिक्षा की उन्नति न होती तो कदापि जापान आज रूस-विजयी न कहलाता। यह राय बड़े बड़े लब्धप्रतिष्ठ, नीतिनिपुण और प्रसिद्ध मनुष्यों की है।

चीन—जापान की लड़ाई हुए दश वर्ष हुए। उस समय याल्लू नदी के किनारे जापानियों की तोपों की दिल दहलानेवाली आवाज़ ने योरप, अमेरिका और एशिया की प्रबल शक्तियों को सोते से जगा सा दिया। उन्होंने समझा कि सुदूर पूर्व में भी एक प्रबल शक्ति का प्रादुर्भाव हुआ और बड़े बड़े राजकीय मामलों में अब, आगे, उससे भी सलाह मशविरा करने की ज़रूरत पड़ा करेगी। जापान की इस अश्रुतपूर्व उन्नति का कारण क्या है? कारण यह है कि जापान ने विज्ञान को अपने देश में सबसे अधिक प्रधानता दी है। शान्ति के समय में भी और अशान्ति के समय में भी उसने वैज्ञानिक शिक्षा को अपनी उन्नति का आधार माना है। जितने कला कौशल हैं, जितने अध्यवसाय हैं, जितने कल कारख़ाने हैं, जापान में, सब कहीं, विज्ञान, विज्ञान, विज्ञान देख पड़ता है। जापान का प्रायः कोई भी काम, कोई भी शिक्षा-विभाग, कोई भी व्यवसाय, विज्ञान से ख़ाली नहीं। जापान के समरवीर समुराई बड़ेही बहादुर और रण-कुशल हैं। परन्तु यदि जापान विज्ञान का आश्रय न लेता तो पश्चिम की प्रबल पराक्रमी फ़ौज के सामने समुराइयों की समर-कुशलता कुछ काम न देती। यदि जापान में विज्ञान का प्रवेश न होता तो वह

विदेशियों के द्वारा अब तक पददलित हो गया होता; उसका बालसूर्य्यधारी झण्डा गिरगया होता; उसकी जातीयता का सर्वनाश हो गया होता; पराक्रमी समुराइयों के खूनकी नदियां बहकर शान्तसागर में शान्त होगई होतीं; और अपने पुराने बेढँगे शस्त्रों को लेकर अर्वाचीन शस्त्रधारी विदेशियों के सामने जापान के देश-भक्त जापानी एक एक करके कट गये होते। परन्तु विज्ञान ने जापान को इस प्रलयङ्कर विनाश से बचा लिया।

जापान की गवर्नमेण्ट का ध्यान वैज्ञानिक शिक्षा की तरफ़ सबसे अधिक है। यदि रेल, तार, टेलिफ़ोन, जहाज़ और हथियार बनाने के कारख़ाने, खानें, फ़ौजी और यञ्जिनियरी स्कूल जापान में न होते तो जैसी फ़ौज इस समय जापान के पास है वैसी कदापि न होती। और यदि होती भी तो निर्बल होती। रूस-जापान की लड़ाई ने इस बात को अच्छी तरह साबित कर दिया है कि जातीय उन्नति के लिए जितने बड़े बड़े सार्वजनिक काम किये जांय, विज्ञान का बीज उनमें ज़रूर होना चाहिए। यदि जापान रेल न बनाता तो थल की राह से वह फ़ौज और फ़ौजी सामान जल्द न भेज सकता। यदि वह सब तरह के जहाज़ न रखता तो समुद्र पार करके कोरिया और माँचूरिया में वह अपनी फ़ौज न ला सकता। तार और टेलिफ़ोन के बिना यथेष्ट शीघ्रता के साथ ख़बरें न भेजी जा सकतीं। हथियार और जहाज़ बनाने के यदि कारख़ाने न होते तो वह एक दिन भी रूसका मुक़ाबला न कर सकता। बे-तारकी तारबरक़ी और गुब्बारों तक से जापान ने यथेष्ट काम लिया है। युद्धविद्या, यंत्रविद्या, रसायन शास्त्र, वैद्यक शास्त्र, गैस, बिजुली, इत्यादि से सम्बन्ध रखने वाली एक भी बात ऐसी नहीं जिसमें जापान, योरप और अमेरिका से किसी तरह कम हो।

पश्चिमी विद्या, विज्ञान और सभ्यता को जापानी साँचे में ढाल करही जापान चुप नहीं रहा। उसने उसके भी आगे क़दम बढ़ाया है। जापान अब अपने जहाज़ आपही बनाने लगा है। उनके बनाने में उसने नई नई युक्तियों से काम लिया है। अनेक बातें उसने ऐसी की हैं जो और शक्तियों के जहाज़ों में नहीं पाई जातीं। जहाज़ों से यहां मतलब उन जलयानों से है जो आजकल सभ्य शक्तियां लड़ाई के लिए बनाती और तैयार रखती हैं। जापान का जहाज़ी बेड़ा देखकर इङ्गलेण्ड भी उसकी तारीफ़ करता है। जल-शक्ति में इँगलैण्ड की बराबरी कोई देश नहीं कर सकता। इँगलैण्ड के पास बैटलशिप नामक प्रचण्ड लड़ाकू जहाज़ों की संख्या ५० के ऊपर है! पर और शक्तियों के पास १६ से अधिक नहीं। अतएव इँगलैण्ड के समान परम पराक्रमी देश जब जापान की जलसेना और जहाज़ी बेड़े की तारीफ़ करता है तब उसमें अवश्यही कोई वैज्ञानिक विशेषता होगी। जापान ने यद्यपि युद्धविद्या इँगलैण्ड और जरमनी से ही सीखी है; परन्तु उसने उसमें अब इतनी अधिक उन्नति करली है कि इँगलैण्ड ने हरसाल कई अफ़सर जापान भेजना निश्चित किया है। वे वहां जापानी युद्ध-कौशल की शिक्षा प्राप्त करेंगे। गुरु गुड़ही रहा, चेला खांड़ हो गया!

एक अँगरेज़ी सामयिक पत्रिका का अँगरेज़ लेखक कहता है कि विज्ञान के बल से जापान ने अपने जहाज़ों में कई एक ऐसी उन्नतियां की हैं जिन्हें देखकर संसार भरके जलयुद्ध-विद्या-विशारद चकित हो जाते हैं। जापान की जल-सेना के अफ़सर अपने अपने काम में इतने होशियार हैं कि अनेक बातों में वे इँगलैण्ड को भी अब सबक़ दे सकते हैं। यह सब विज्ञान-वृद्धि की महिमा है। इस पर भी जापान हर साल हर तरह की विज्ञान-शिक्षा के लिए योरप और अमेरिका को अनेक होनहार युवकों को भेजता है। विद्या और विज्ञान में वह किसी देश से पीछे नहीं रहना चाहता। जापान ने थोड़ेही समय में अनेक अद्भुत अद्भुत आविष्कार भी किये हैं।

जापानियों के बराबर देशभक्त और कोई पृथ्वी की पीठ पर नहीं है। देशभक्ति से प्रेरित हो कर विद्या और विज्ञान के बल पर वे असम्भव को

सम्भव कर दिखाते हैं। जापान भी एशिया में है। हिन्दुस्तान भी एशिया में है। अधिकांश जापानी बौद्ध हैं और बौद्ध-मत के प्रवर्तक की जन्मभूमि हिन्दुस्तान ही है। प्रायः हिन्दुस्तानियों की तरह जापानी भी ठिंगने होते हैं। जापानियों और हिन्दुस्तानियों के रूप, रङ्ग में भी बहुत कुछ साम्य है। हिन्दुस्तानियों के समान जापानी भी निरुपद्रवी, सहनशील, परोपकारी, दयालु, माता-पिता के भक्त और सरल स्वभाव होते हैं। परन्तु दोनों में असमानता भी है। जापानी स्वाधीन हैं, हिन्दुस्तानी पराधीन। जापानी देशभक्त हैं, हिन्दुस्तानी देशभक्त नहीं। जापान में एकता है, हिन्दुस्तान में एकता का अभाव है। वैज्ञानिक शिक्षा के लिए सात समुद्र पारकर जाना जापानी लोग अपने और अपने देश के लिए गौरव समझते हैं; पर समुद्र पारकर जाना हिन्दुस्तानियों के लिए पाप है, क्योंकि उनका धर्म्म जाता रहता है। जापान में जाति-भेद का बहुत ही कम विचार है; हिन्दुस्तान में जाति-भेद का सबसे अधिक विचार है। जापान में सब लोग परस्पर शादी विवाह करते हैं, हिन्दुस्तान में अपने वर्ग में भी शादी करने में अनेक झंझट पैदा होते हैं। जापान में छुआछूत नहीं; हिन्दुस्तान में इसकी पराकाष्टा है। ये बातें विचार करने लायक़ हैं। पर विचार करनेवालों ही की यहां कमी है। विचार करै कौन?

आँख।

[संख्या ६ से आगे]

(७) प्रायः पदार्थों की दूरता का ज्ञान उनके माने हुए आकार से होता है। हमारे नेत्र में किसी मनुष्य के चित्र का कोई आकार बसा हुआ है। उससे कम या अधिक होने से हम देखे हुए पदार्थ को दूर या समीप मान लेते हैं।

अवश्य ही यहां सच्ची दूरी का विचार किया गया है। मानसिक दूरी बड़ी विलक्षण है। विद्यार्थियों को घर से मदरसे की दूरी, मदरसे से घरको दूरी से दूनी मालूम होती है। प्रेमिक को प्रेयसी के घर की दूरी का जो अभ्यास है, वह वास्तविक दूरी से बहुत भिन्न है!

सम्पादित परिवेदन।

अनुभव और तर्क के द्वारा हमें कृत्रिम, प्राप्त, या सम्पादित ज्ञान इन्द्रियों से होते हैं। वास्तव में जिह्वा से 'रसानुभव' मात्र ज्ञात होता है; किन्तु बारम्बार अभ्यास से हम यह जानने लगते हैं कि यह रस जलका है, यह इमली का है। गन्ध में भी नासाग्र की चेतना ही पहले पहल पाई जाती है। किन्तु अनुभव, गुलाब और चमेली के गन्ध में भेद, गन्ध इधर है वा उधर, पास है वा दूर, इत्यादि का ज्ञान सिखा देता है। स्पर्श में, असल में, शरीर की सतह पर किसी सत्ता का ही अनुभव होता है, किन्तु अभ्यास से भिन्न भिन्न भाव जाने जाते हैं और यह भी जान पड़ता है कि स्पर्श उष्ण है या शीत, सुखदायक है या दुःखदायक। शब्द भी, पहले कर्णचालन मात्र होकर, अभ्यास से, दहने हैं या बायें, मनुष्य की आवाज़ है या ढोल की इत्यादि भेद बता सकता है। स्नायुसम्बन्धी इन्द्रिय से भी भिन्न भिन्न चोटों का भेद जानना सीखा जाता है। ऐसेही आँख से दूरी का कृत्रिम ज्ञान होता है।

जिन पदार्थों का क़द हम जानते हैं उनके उपमान से हम और पदार्थों की उँचाई समझते हैं। आगरे के ताज के बुर्जों पर चढ़े हुए मनुष्यों की तुलना से हमें बुर्ज को उँचाई का अनुमान होता है। चित्रकार चित्र के मकान की उँचाई दरसाने को, उसके सामने आदमी का चित्र बना देता है; और "बछड़ा है" यह समझाने को बछड़े के चित्र में गौ बना देता है।

द्विनेत्रावलोकन से हमें पदार्थों की स्थूलता का ज्ञान होता है। लम्बाई, मोटाई, चौड़ाई तीनों का ज्ञान तो स्पर्श तथा स्नायु से होता है; किन्तु दोनों आँखें दोनों तरफ़ के भिन्न भिन्न चित्र दिखाती हैं। इसलिए हमें मोटाई का भाव जान पड़ने लगता है। नेत्रों के अभाव में और इन्द्रिय कहां तक

सहायता करते हैं यह जानकर आश्चर्य होता है। सांडरसन नामक अन्धा गणितज्ञ, हाथ से ही, कई रोमन तमग़ों में से जाली तमग़े को पहचान सकता था। जब कभी वह अपनी पाठशाला के बाग़ में बैठा होता तब वह सूर्य पर बादल आते ही जान लेता। यह इन्द्रिय-विशेष की उन्नति का ही नहीं, किन्तु बची हुई इन्द्रियों को ओर अधिक ध्यान देने के अभ्यास का फल है। एक अन्धे ने, एक घोड़े की परीक्षा करते समय, उसे अन्धा बताया। यह बात सत्य थी, किन्तु किसी परीक्षक ने यह नहीं पहचाना था। अन्धे ने यह कारण बताया कि घोड़े की टाप की आवाज़ में एक प्रकार की सचेतता और डर पाया जाता था! दूसरे ने ऐसे ही मौक़े पर एक घोड़े को काना बताया और हेतु यह कहा कि एक आँख दूसरी की अपेक्षा शीतल थी !! अन्धे दार्शनिक डाकृर मायस गन्ध से अपने मित्रों की काली पोशाक पहचानते थे। अन्धे मनुष्य प्रायः स्पर्श से रङ्ग जान लेते हैं। एक ऐसे अन्धे ने "बायल" साहब से कहा था कि उसे काला, खुरखुरा और नीला पदार्थ बहुत मुलायम प्रतीत होता है। डाकृर रश दो अन्धे भाइयों का हाल लिखते हैं कि वे, सड़क पर चलते हुए, खम्भे के पास की ज़मीन की आवाज़ से, खम्भा जानकर, हट जाते थे! और अपने प्यारे पालतू कबूतरों के उड़ने ही से उन्हें नाम लेकर पुकार सकते थे !! अमेरिका के आदिम निवासी और भारतवर्ष के मीने पहाड़ों में दुश्मनों के पैरों के चिन्ह पहचान लेते हैं, और उनकी संख्या तक बतला देते हैं !!!

किन्तु, कभी कभी, ऐसा ख़याल होता है कि इन्द्रिय धोखा देते हैं। प्राचीन लोग तो इन्द्रियों को छली मानते थे। परन्तु हमारे संवेदन और परिवेदन सब ठीक होते हैं; भ्रम के कारण हमीं ही हैं! नियमित इन्द्रिय-प्राप्त ज्ञान को अनियमित और पर्याप्त मानकर हम जो अनुमान या उपमान करते हैं भ्रम उसी में है। ऐसे धोखे आँख के सम्बन्ध में बहुत होते हैं, क्योंकि ज्ञान का बड़ा भारी भाग आँख के द्वारा ही होता है। बड़े भारी मैदान, तालाब या समुद्र की दूसरी तरफ़ दिखाई देनेवाले पदार्थों को हम बहुत समीप समझते हैं। रेल पर चलते समय पेड़ और पर्वत चलते और रेल ठहरी हुई प्रतीत होती है। बड़ी ऊंची इमारतों में घुसते हुए मनुष्य इमारत के सामने निरे बच्चे प्रतीत होते हैं।

यहां पर मनोविज्ञान की एक और बात जान लेनी चाहिए। वह यह कि मनुष्य के कितने इन्द्रिय हैं, उनमें क्या क्या विशेषता है, और वस्तु-ज्ञान के हिसाब से उनका क्या उपयोग है। उनका परस्पर सम्बन्ध और आँख की प्रधानता जाने बिना विषय ठीक ठीक नहीं खुलेगा।

त्वक्, रसना, घ्राण, कान और आँख ये पांच ज्ञानेन्द्रिय हैं। इन इन्द्रियों के द्वारा हमें 'भावों' (Feelings) का ज्ञान होता है। भाव सुख या दुःख के बोधक हैं। तो बताइए पेट का दर्द किस इन्द्रिय का भाव है? इस लिए मानना पड़ता है कि "साधारण इन्द्रिय" या "दैहिक इन्द्रिय" और है जो इन सबके नीचे है और इन सब का आदिम स्वरूप है। साधारण इन्द्रिय के भाव प्रायः एकही प्रकारके होते हैं, किन्तु ज्यों ज्यों विशेषता बढ़ती जाती है त्यों त्यों भावों का भेद भी बढ़ता जाता है। इन्द्रियों से हम भावों का ही काम नहीं लेते हैं किन्तु ज्ञान का भी। इन्द्रियों का सामान्य क्रम ऐसा है—साधारण इन्द्रिय, त्वक्, रसना, घ्राण, दृष्टि और श्रोत्र। ज्ञान के अनुसार यह क्रम बिलकुल बदल जाता है। यथा—साधारण इन्द्रिय, रसना, घ्राण, श्रोत्र, स्पर्श और दृष्टि।

पशुओं में घ्राण अधिक ज्ञान देता है। जो सुना हुआ ज्ञान है उसके विषय में तो 'श्रोत्र' को सबसे आगे मानना चाहिए, किन्तु परिज्ञान की दृष्टि में स्पर्श और चक्षुही प्रधान हैं। इनसे कई भाव और कई ज्ञान एक ही काल में जाने जाते हैं। आँख की प्रधानता इससे प्रकट हुई; किन्तु एक और इन्द्रिय

है जिससे मिलकर आँख और सब इन्द्रियों का बादशाह बन गई है। हम में एक छठी इन्द्रिय भी है—उसका नाम स्नायवीय इन्द्रिय या कर्मेन्द्रिय है। जब हम इच्छापूर्वक कुछ काम करते हैं, तब हमें, कार्य-विचार के साथ ही चेतना होती है। इस चेतना का ज्ञान हमें इस कर्मेन्द्रिय से होता है। हम चल सकते हैं; हम हिल सकते हैं; हमारे स्नायु हमारे आधीन हैं—यह ज्ञान इसीका दिया हुआ है। यह विलक्षण इन्द्रिय है। यह पराधीन रूपसे भाव नहीं ग्रहण करती, और अब तक जाने हुए इन्द्रियों से भिन्न होने के कारण पृथक् नहीं दिखाई पड़ती। यह इन्द्रिय यद्यपि ७०-८० वर्ष से ही जानी गई है, परन्तु यह इन्द्रियों के हक़ में बड़े काम की है; क्योंकि यह उन्हें पराधीन से स्वाधीन बना देती है। जो कुछ किसी इन्द्रिय के पास है, उसीका हमें ज्ञान होगा; जो नहीं है उसे हम नहीं पासकते। पर स्नायु-शक्ति के कारण अकर्त्ता इन्द्रिय कर्त्ता बन जाते हैं। जब हमें ज्ञान होता है कि हम—कर्त्ता बन कर—स्वयं संवेदन कर रहे हैं, तब जानना चाहिए कि कर्मेन्द्रिय के योग से वह इन्द्रिय 'कर्त्ता' बन गया। उदाहरण लीजिए। साधारण इन्द्रिय तो अकर्मण्य अर्थात् पराधीन इन्द्रिय का नमूना है। 'रस' में दोनों रूप हैं—एक तो जीभ पर रक्खी हुई चीज़ का रस चखना और एक इच्छापूर्वक जीभ बढ़ाकर रस लेना। 'घ्राण' पराधीन ही है; परन्तु, हम सूंघ या साँस ले सकते हैं। श्रोत्र में दोनों रूप हैं; एक यथास्थित सुनना; दूसरा ध्यान देकर सुनना। चक्षु में इन्द्रिय अतीव चञ्चल है। वह कई आसन धारण करती है। त्वक् का मुख्य कारण हाथ भी अति-चञ्चल है। अतएव, कर्मेन्द्रिय के योग से, ये दोनों चलने फिरनेवाले इन्द्रिय, स्वाधीन इन्द्रियों के नमूने हैं!

इस बात पर इतना ज़ोर क्यों दिया गया? इस लिए कि स्वाधीन इन्द्रिय परिवेदन में बड़ा काम देते हैं। संवेदन—अर्थात् पराधीन इन्द्रियों का ज्ञान—एक कल्पना मात्र है; चेतना में यह कभी नहीं होता। हम खरखरापन, मुलायमी, गर्मी, सर्दी आदि त्वक् के गुणों को किसी पदार्थ पर मढ़ते हैं; हम यह नहीं कहते कि हम 'रंग' देखते हैं; किन्तु कहते हैं कि हम 'गुलाब' देखते हैं। 'लड्डू' कहने से पाठकों को पहले गोल चीज़ का ज्ञान होगा, पीछे मिठास का। सो, इन्द्रियों के जाने हुए भावों को अपने से पृथक् किसी पदार्थ पर लगा देने का व्यापार रात दिन होता है, और इसका नाम परिज्ञान या परिवेदन (Perception) है। परिवेदन, विशेष करके पदार्थपरिवेदन, वह चेतना है जो खर्च की हुई स्वाधीन शक्ति के ज्ञान पर, अर्थात् कर्मेन्द्रिय पर, अवलम्बित है।

परिवेदन बिना कर्मेन्द्रिय का प्रयोग नहीं होता। किसी पदार्थ को देखकर या छू कर मैंने कह दिया कि यह "किताब" है। अब विचारना चाहिए कि यह ज्ञान कहां से आया। पराधीन इन्द्रियों के संवेदन से तो रंग, गन्ध या स्वाद जाना जा सकता है। उस स्वाद, गन्ध या रङ्ग का आधार हमने कैसे बना लिया? यह जानना कर्मेन्द्रिय की सहायता से स्वाधीन नेत्र और त्वक् का काम है। पदार्थों में दो गुण हैं, विस्तार और रोध। इन्हींके होने से पदार्थ पदार्थ हैं; और यदि ये गुण न हों तो पदार्थ पदार्थ हो नहीं। एक पदार्थ अवश्य ऐसा है जिसमें विस्तार है, किन्तु रोध नहीं, जैसे आकाश। किन्तु यह सबसे प्रधान गुण विस्तार, और उससे कुछही कम प्रधान रोध किसी भी पराधीन इन्द्रिय से नहीं जाने जाते। ये स्वाधीन इन्द्रिय से, अथवा दृष्टि और त्वक् से मिली हुई कर्मेन्द्रिय से ही जाने जा सकते हैं; और इसीसे समझ लेना चाहिए कि पदार्थपरिवेदन में स्नायविक शक्ति कितना काम करती है। [असमाप्त।

चन्द्रधर शर्म्मा गुलेरी।



महाश्वेता ।

सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका।

भाग ६] सितम्बर, १९०५ [संख्या ९

विविध विषय।

शुक्रवार, १८ अगस्त, १९०५, को वङ्गवासी प्रेस के मालिक बाबू योगेन्द्रचन्द्र वसु का शरीरपात हो गया। यह सुनकर हमें बहुत रंज हुआ। सुनते हैं आपकी उम्र अभी सिर्फ़ ५१ वर्ष की थी। पर गत दो तीन वर्षों से आपकी तबीयत अच्छी न रहती थी। इससे आप कलकत्ता छोड़ कर मधुपुर चले गये थे। वहीं वे कुछ दिन से रहते थे। बर्दवान ज़िले में एक जगह बेड़ू गाँव है। वहीं आपका जन्म, १८५५ ईसवी में, हुआ था। १८८० ईसवी में वे कलकत्ते आये। आकर आपने बँगला में वङ्गवासी अख़बार निकाला। उसमें आपको कामयाबी हुई। कई वर्ष बाद आपने "हिन्दी-वङ्गवासी" की स्थापना की। उसमें भी आपको सफलता हुई। रूस-जापान की लड़ाई शुरू होने पर आपने अंगरेज़ी में एक दैनिक पत्र "टेलिग्राफ़" नाम का भी निकाला। उसका दाम आपने एक पैसा रक्खा। आपका यह अख़बार भी ख़ूब चल निकला। अच्छी अच्छी पुस्तकें उपहार में देकर ग्राहक बढ़ाने की आप ही ने पहले पहल युक्ति निकाली। "हिन्दी-वङ्गवासी" के ग्राहकों को भी आपने कई अच्छी अच्छी पुस्तकें उपहार में दीं। बंगाली होकर आपने हिन्दी अख़बार निकाला और हिन्दी बोलने वालों में अख़बार पढ़ने की रुचि की वृद्धि की। अतएव हम लोग उनके कृतज्ञ हैं। आपके एक फोटो के लिये हमने वङ्गवासी प्रेस को दो पत्र लिखे, परन्तु खेद है कोई उत्तर आज तक न मिला।

* * *

आज कल कई विद्वानों का ध्यान मरों को जिलाने की युक्ति निकालने की ओर लगा हुआ है। वे रासायनिक प्रक्रियाओं के द्वारा सञ्जीवनी शक्ति पैदा करने की युक्ति निकालना चाहते हैं। कैलीफोर्निया के अध्यापक लोब को इसमें कुछ कामयाबी भी हुई है। वे इस असम्भव सी मालूम होनेवाली बात को सम्भव करके दिखलाना चाहते हैं। बहुत दिनों से कैलीफ़ोर्निया में समुद्र

के किनारे एक बहुत बड़े विज्ञानागार में वे इस विषय की हज़ारों परीक्षायें कर रहे हैं। इन परीक्षाओं में उन्हें यहां तक सफलता हुई है कि जलचर जीवों के मुर्दा अंडों को उन्होंने ज़िन्दा करके उनसे बच्चे पैदा कर दिये हैं—दो चार नहीं, हज़ारों। ये बच्चे वैसेही हुए हैं जैसे होने चाहियें। उनके रूप, रंग ग्रैार आकार आदि में ज़रा भी भेद नहीं। सजीव अंडों के भीतर जीवित गर्भबीजों को मार कर वे सिर्फ़ ओषधियों के बल से उन्हें सजीव कर देते हैं। अब वे ग्रैार ग्रैार जीवों की भी, इसी तरह, जांच करना चाहते हैं। यदि उसमें भी उन्हें सफलता हुई—ग्रैार होने को पूरी आशा है—तो किसी दिन मनुष्य के भी मृतक शिशु जीवित किये जा सकेंगे! जब निर्जीव गर्भ-पिण्ड ग्रैार निर्जीव शिशु सजीव हो सकेंगे, तब मरे हुए मनुष्य के शरीर में फिर से प्राणसंचार करने में भी कुछ कठिनाई न होगी। तथास्तु!

*
* *

लीनों नाम के एक साहब ने छापने की एक कल निकाली है। उसे निकले कई साल हुए। उसका नाम है "लीनो-टाइप प्रिंटिंग मैशीन"। उसमें यह बिलक्षणता है कि जो कुछ छपता है नये टाइप—अक्षर—में छपता है। अर्थात् टाइप भी ढलते जाते हैं ग्रैार साथ ही वे कम्पोज़ भी होते (जुड़ते) जाते हैं। इस तरह की छापे की कलें इस देश में भी आई हैं ग्रैार काम देरही हैं। कलकत्ते का प्रसिद्ध अख़बार "अमृतबाज़ार पत्रिका" इसीसे छपता है। इस मैशीन को देख कर पूना के पण्डित बाल गङ्गाधर तिलक ने देवनागरी अक्षरों के लिये भी एक ऐसीही कल ईजाद की है। यह उन्होंने बड़ा काम किया है। अंगरेज़ी में थोड़े टाइपों का काम रहता है। पर नागरी में युक्ताक्षर, अनुस्वार, विसर्ग ग्रैार मात्रा आदि का बड़ा बखेड़ा है। इससे नागरी के लिए ऐसी मैशीन का बनाना बहुत कठिन काम था। परन्तु तिलक महाशय ने इस कठिनता को हल करदिया। अब कुछ दिनों में आपका "केसरी" इसी तरह की मैशीन से छप कर निकलेगा। सुनते हैं केसरी की कोई १५ हज़ार से भी ऊपर कापियां निकलती हैं!

* *
*

पण्डित देवीप्रसाद शुक्ल, बी० ए०, लिखते हैं—

"जुलाई १९०५ की सरस्वती में प्रकाशित 'पूर्वी हिन्दी का एक ग्रैार नमूना' शीर्षक लेख में पण्डित चन्द्रिकाप्रसाद तिवारी का एक पत्र छपा है, जिसमें उक्त पण्डितजी ने डाक्टर ग्रियर्सन की किताब में दिये हुये उन्नाव ज़िले की अवधी बोली के एक नमूने में त्रुटियां दिखलाई हैं। तिवारी जी शायद इस नमूने की भाषा से तो असन्तुष्ट हैंहीं, परन्तु उसके विषय से तो अत्यन्त ही असन्तुष्ट जान पड़ते हैं। मेरी अल्पबुद्धि में यदि भाषा में त्रुटियां हैं तो असन्तुष्ट होने की बात अवश्य है; परन्तु इन नमूनों के विषयों से हमें क्या मतलब? वे कुछ भी हुआ करें। नमूने तो भाषा मात्र के उदाहरण हैं। तदन्तर्गत कहानियों की यथार्थता का तो वे दावा करते नहीं। हां, उसी देश की बोली में उसी देश की कहानियों का होना तो सोने में सुगन्ध ही है। पर यदि ऐसा न हो तो कोई बुरा मानने की बात नहीं। सूअर चराने वाली कहानी ठीक ठीक अवधी बोली में कही गई है या नहीं, सो तो अवधवासी ही जानें; पर हां, इसका विषय ज़रूर विदेशीय है। मेरी समझ में किसी ने ग्रियर्सन साहब के पास बाइबिल, सेण्ट लूक, के पन्द्रहवें बाब की ग्यारहवीं आयत से लगाकर उन्नीसवीं आयत तक का तर्जुमा करके भेज दिया है। ऐसे सज्जनों से, जो इस कहानी को पढ़ कर रुष्ट होगये हैं, मेरी यह प्रार्थना है कि यह कहानी अवधवासियों के रीतिरवाजों का नमूना नहीं; किन्तु केवल उनकी बोली का नमूना है। यदि इस देश वाले अपनी कहानियां परदेश की बोली में लिखते हैं, तो परदेशवाले अपनी कहानियां इस देश की बोली में क्यों न लिखें?"

पण्डित देवीप्रसाद जी हमें क्षमा करें, हम इस विषय में उनसे सहमत नहीं। विदेशी लोग अपनी कहानियां, अपने धर्म्म-शास्त्र की आयतें, अपनी स्मृतियों के वाक्य, हमारी बोली में लिखें। हज़ार दफ़ा लिखें, लाख दफ़ा लिखें। पर इतना कह देने की वे कृपा करें कि वे कहानियां, अथवा आयतें, अथवा वाक्य, उनके देश के हैं। बाइबिल में और कोई आयतें पूर्वी हिन्दी का नमूना देने के लिए नहीं मिलीं! मिलीं कौन? भलेमानसों के यहां सुअर चराने की! 'सिटिज़न' (citizen) शब्द का अनुवाद 'भलेमानुस' बहुत ही बढ़िया हुआ है! कहानी भी विलायती और अर्थ भी विलायती! बहुत करके इस कहानी को डाकृर ग्रियर्सन ने ही भिन्न भिन्न बोलियों में तरजुमे के लिए भेजा होगा। अथवा किसी और अँगरेज़ की कृपा होगी। क्योंकि हमारी समझ में कोई भी बाइबिल-पाठी भारतवासी—चाहे वह हिन्दू हो या मुसल्मान—ऐसी कहानी न चुनैगा। यदि हिन्दुस्तान की बोलियों के नमूने देने में कोई यह लिख मारै कि कोई कोई आदमी किसी किसी महा असभ्य जङ्गली जाति के आदमियों की तरह, अपने घर-वालों के मुरदे आपही खा जाते हैं, अथवा बहुत बीमार होने पर अपनी स्त्रियों को जीती जला देते हैं, अथवा पैदा होते ही अपनी लड़कियों को मार डालते हैं, तो क्या आक्षेप की बात नहीं?

***

मध्य अफ़रीक़ा के इटूरी नामक विकट जङ्गल में जो लोग रहते हैं, उनमें से एक जाति के जङ्गली आदमी बहुत ही छोटे होते हैं। इंगलैण्ड के पार-सन नामक एक साहब को इन आदमियों से बड़ा प्रेम है। बड़ी बड़ी मुशकिलें झेलकर आप ऐसे ६ जङ्गलियों को अपनी विलायत लेगये हैं। वहां उनकी प्रदर्शिनी हो रही है। उनमें से चार पुरुष हैं और दो स्त्रियां। उनकी उम्र १८ से ३५ वर्ष तक



है। ये जङ्गली बौने ४० वर्ष से अधिक नहीं जीते। अतएव जिसकी उम्र ३५ वर्ष की है उसे बहुत बुड्ढा समझना चाहिए। इन लोगों की उँचाई ३ से ५ फुट तक है। जो उम्र में सबसे अधिक है, उसकी ठुड्डी पर कुछ बाल भी हैं। बाक़ी औरों का चेहरा सफ़ा चट है। इनके मुंह पर अकसर बाल नहीं होते। ये लोग अपने देश के जङ्गलों में ख़ूब नाचते गाते रहते हैं। पर साहब लोगों के सामने नाचते इन्हें संकोच होता है। बड़ी मुशकिल से, बहुत कहने सुनने पर, ये एक

दिन नाचने पर राज़ी हुए। जहां इन्होंने नाचना शुरू किया, तहां देखनेवालों ने इन्हें ज़ोर से शाबाशी दी। यह सुनकर ये शरमिन्दा होगये और फ़ौरन ही इन्होंने नाचना बन्द कर दिया। अफ़रीक़ा के ये आदिम जङ्गली अपनी छोटी छोटी छोलदारियों के दरवाज़े पर अपनी जङ्गली पोशाक पहन कर जब बैठते हैं, तब उन्हें देखकर लोगों को बड़ा कुतूहल होता है।

***

पण्डित माधवराव सप्रे, बी० ए०, के प्रयत्न से नागपुर में एक हिन्दी ग्रन्थप्रकाशक मण्डली स्थापित हुई है। इसका उद्देश्य हिन्दी में अच्छे अच्छे ग्रन्थों को प्रकाशित करना है। यह मण्डली हिन्दी ग्रन्थ-माला नाम की एक ६० पृष्ठ की मासिक पुस्तक निकालना चाहती है। तीन सौ ग्राहक होते ही यह पुस्तक निकलने लगेगी। इसमें इतिहास जीवन-चरित, राजनीति, अर्थ-शास्त्र, विज्ञान, नाटक, उपन्यास, आख्यायिका और समालोचना आदिक विषयों पर ग्रन्थ और निबन्ध निकलेंगे। इसका वार्षिक मूल्य ३) रुपये होगा। जिन लोगों के निबन्धपुष्प इस माला में गूंथे जांयगे, उनको योग्यतानुसार पुरस्कार भी मिलेगा। इसे सोने में सुगन्ध समझना चाहिये। इसमें छपने के लिए कई एक ग्रन्थ और लेख पहले ही से तैयार हैं। यदि निकल कर प्रचलित हो जाय तो इस मासिक पुस्तक से बड़ा लाभ हो। हिन्दी में अच्छे अच्छे ग्रन्थों का प्रायः अभाव है। वह अभाव यह पुस्तक दूर कर सकती है। इसमें छपे हुए ग्रन्थ समाप्त होने पर अलग बाँधे जाँयगे। उनकी जिल्द भी बहुत अच्छी बनेगी। जिनको अपनी मातृभाषा से कुछ भी प्रेम है और जो अपनी मातृभूमि को कुछ भी उन्नत स्थिति में देखना चाहते हैं, उन्हें इस मण्डली का सभ्य होना चाहिये और ग्रन्थमाला को भी लेना चाहिए। मण्डली का नियमपत्र मैनेजर, देशसेवक प्रेस, नागपुर, को लिखने से मिलता है।

***

निगमागम चन्द्रिका के दसवें भाग की १ से ५ तक संख्यायें एक ही साथ निकली हैं। उन सबकी एकही पुस्तक है। पुस्तक के ऊपर लिखा है—"कृपाकर समालोचना कीजिए"; परन्तु इसके नीचे किसी का नाम नहीं है। नहीं मालूम इसे किसने भेजा है—सम्पादक ने, मैनेजर ने या और किसी ने? खैर, किसीने भेजा हो, हमारा निवेदन यह है कि निगमागम-चन्द्रिका धर्म्म-सम्बन्धिनी है। धर्म्म-सम्बन्धी ही लेख इसमें प्रायः छपते हैं। इस कारण हम इसकी समालोचना सरस्वती में नहीं कर सकते, क्योंकि सरस्वती में धर्म्म-विषयक लेखों की समालोचना नहीं छपती। इस संख्य-पञ्चक में समाचारपत्रों और पत्रिकाओं की संक्षिप्त समालोचना भी है। उसमें एक जगह है—'सरस्वती सर्वाङ्गपूर्ण पत्रिका होने पर भी कभी कभी उससे प्रदीप और समालोचक बढ़े जाते हैं"। सरस्वती को सर्वाङ्गपूर्ण कहने और तद्द्वारा हमारे उत्साह को बढ़ाने के लिये हम सम्पादक महाशय के कृतज्ञ हैं। किसी किसी की राय है कि प्रदीप और समालोचक ही नहीं, किन्तु और भी कई मासिक पत्र सरस्वती से बढ़े चढ़े हुए हैं। अतएव निगमागम-चन्द्रिका के सम्पादक से हमारी प्रार्थना है कि सरस्वती ऐसी पीछे पड़ी हुई पत्रिका पर वे अपनी कृपादृष्टि रक्खें और ऐसा आशीर्वाद दें जिसमें वह कभी बढ़कर उन्हें प्रसन्न कर सके।

***

पण्डित यज्ञेश्वर धर्म्माधिकारी ने पृथ्वी-छन्द में कई मनोहर पद्य भेजे हैं। उनमें सरस्वती की प्रशंसा है। इस लिए हम आपके बहुत कृतज्ञ हैं। आपकी कविता हमारे लिए बहुत उत्साहवर्द्धक है; परन्तु आत्मश्लाघा को प्रकाशित करना अच्छा नहीं। अतएव, खेद है, हम आपके पद्यों को नहीं प्रकाशित कर सकते। आप हमें कृपापूर्वक क्षमा करें।

जोधा बाई।

अकबर बादशाह की उदार राजनीति ने उसे अमर कर दिया है। उसने हिन्दू-मुसलमानों को एकता के सूत्र में बाँध कर भारत में जिस कल्याणकर युग की स्थापना की थी, वह सदा के लिए इतिहास के पृष्ठों पर उज्ज्वलता के साथ लिखा रहेगा। मुसलमान होने पर भी वह हिन्दू-जाति के युग-युगान्तर-व्यापी धर्म-गौरव पर मुग्ध हो गया था। हिन्दुओं का आचार, व्यवहार, सरलता, सत्यनिष्ठा, स्वामिभक्ति और कर्त्तव्यपरायण-बुद्धि ने उसके हृदय-मन्दिर के भीतर सात्विक और प्रबल आन्दोलन मचा दिया था। केवल यही क्यों? हिन्दुओं के वीरत्व को देख कर वह श्रद्धापूर्वक विस्मित हो उठा था। उस समय हिन्दुओं के यहां श्मशानरूपी विशाल भारतवर्ष में केवल एक राजपूत जाति ही जीवित थी। इसी वीर जाति की असीम वीरता और पराक्रम के प्रभाव से दिल्ली का राज्य-सिंहासन सदा कम्पायमान रहता था। मुहम्मद ग़ोरी के भारत-आक्रमण से लेकर इबराहीम लोदी तक कितने ही पठान-वंशों का उत्थान और पतन हो चुका था। परन्तु एक सीसोदिया कुल और राठौर-वंश ही ऐसे थे जो दृढ़ता से निज अस्तित्व की रक्षा करके भारत में हिन्दुओं के पूर्व-गौरव की वैजयन्ती उड़ाते रहे। बाबर ने जब पानीपत के संग्राम में किसी मुसलमान वीर को अपने सामने न पाया, तब राजपूत वीर सांगा ही की तलवार ने उसके भारत-साम्राज्य के अधिकार-मार्ग में प्रबल विघ्न उपस्थित किया। दिल्ली-सिंहासन प्राप्त करने के साथ ही सुचतुर, पर कुटिल-नीति-विशारद, अकबर ने एक बार भारत के चारों ओर नज़र उठा कर देखा। उसे मालूम हुआ कि कहीं कहीं मुसलमानों में अभी पूर्ववत् सजीवता बाक़ी है। राजपूताना की वीर-प्रसविनी भूमि के भी कई एक राजपूत वीरों पर भी उसका ध्यान गया। अन्यान्य प्रदेशों की भांति राजपूताना में भी निज कुटिल-जाल फैलाने को वह उत्सुक हुआ। पर राजपूताना को अपने राज्य में न मिलाकर वह वहां के अधिकारियों को निज सहायक बनाने की चेष्टा करने लगा और दर्बार में उन्हें उसने सादर आह्वान किया। इससे उन लोगों का अधिकार यथावत् रहने पर भी सम्राट् के सैनिक झण्डे के नीचे उन्हें एकत्रित होना पड़ा वीर विहारीमल, भगवानदास, राजा मानसिंह, राठौर-वीर-केसरी रायसिंह मुग़लों के सेनानायक नियत हुये। राठौर-राजा मालदेव ने पहले तो सम्मिलित होना अस्वीकार किया, परन्तु बाद में दिल्लीश्वर की अधीनता को स्वीकार कर अपने ज्येष्ठ पुत्र उदयसिंह को मुग़ल सम्राट के झण्डे के नीचे उपस्थित होने को उसने भेज दिया। केवल एक मात्र सिसोदिया वंश ही ऐसा था जिसने इस महान आह्वान में शामिल न होकर राजस्थान की पवित्र प्राचीन स्वाधीनता की रक्षा की। परिणाम यह हुआ कि चित्तौर नगरी सम्राट् के कोपानल में पड़ कर भस्मीभूत होने लगी। पर सिसोदिया वंश ने निज गौरव की रक्षा करने में किञ्चित् भी ढिलाई न की। यही कारण है जो आज तक सिसोदिया-कुल के प्रातःस्मरणीय महाराना प्रतापसिंह का नाम सारे भारतवर्ष में गौरव और प्रतिष्ठा के साथ लिया जाता है। इस भांति राजपूतों को अपनी पट्टी में लाकर उन लोगों को वैवाहिक बन्धन में बद्ध करने की अकबर ने इच्छा प्रकट की। उसके आचार और व्यवहार पूरे तौर पर म्लेच्छ-प्रथानुयायी न होने के कारण कुछ उदार राजपूत लोग मुग़लों को बेटी देने के लिए तैयार हुये। इस भांति निज राजनीति के बल से अकबर ने हिन्दू-मुसलमानों को एकता के सूत्र में गूंथ डालना शुरू किया।

अकबर ने मारवाड़ के राजवंश से एक राजपूत कन्या को अपनी बेगम बनाया। यह राज-

कुमारी इतिहास में जोधाबाई के नाम से परिचित है। जोधाबाई मारवाड़ के राजा मालदेव की लड़की और उदयसिंह की बहन थी। बहुतेरे जोधाबाई को और जहांगीर की बेगम (बीकानेर



की राजकुमारी) जोधाबाई को एक ही समझते हैं। यह उन लोगों की भूल है। इस प्रबन्ध को पढ़ने से वह भ्रम जाता रहेगा। मैं पहले कह आई हूं कि अकबर राजपूताना में अपना प्रभुत्व जमाने की चेष्टा में था। बीकानेर और अम्बर भी उसकी इस कुटिल नीति के पंजे में, सहज ही, पड़ चुके थे। पर मारवाड़ के मालदेव एक दुर्धर्ष वीर थे। वे शेरशाह सूर के प्रतिद्वन्दी थे। राज्यभ्रष्ट हुमायूँ को अपने राज्य में बुला कर मालदेव ने उसके साथ अत्यन्त ही नीचता का व्यवहार किया था। यदि अकबर के मन में ये बातें खटकी हों तो आश्चर्य्य ही क्या है ? सच तो यह है कि इसी कारण से मालदेव पर उसकी वक्र दृष्टि थी। मालदेव उस समय ज्वर से पीड़ित थे। अतएव भग्नोद्यम होने के कारण यद्यपि वे सम्राट् की बातों को पूरे तौर पर नहीं टाल सके, तथापि अपने पूर्व गौरव पर भी उन्होंने पानी नहीं फिरने दिया। वे दूसरे राजपूत वीरों की भांति सम्राट् की सेवा में नहीं उपस्थित हुये। परन्तु पीछे से वे भी उसके अधीन होगये। मालदेव ने अपने दूसरे पुत्र चन्द्रसेन को बादशाह के सम्मानार्थ अजमेर को भेजदिया*। किन्तु अकबर इस बात से खुश होने के बदले उलटा नाराज़ हो गया, क्योंकि अकबर ने सोचा था कि मारवाड़ के महाराज ख़ुदही उसकी अभ्यर्थना के लिये उपस्थित होंगे। पर मालदेव के इस सङ्कीर्ण व्यावहार से अकबर यहां तक असन्तुष्ट हुआ कि बीकानेर के राजकुमार रायसिंह को वह जोधपुर और बीकानेर राज्य का पट्टा लिख देने को उद्यत हुआ। इधर चन्द्रसेन अपने पूज्य पिता की भांति मारवाड़ के गौरव की रक्षा में प्रयत्नशील हुआ। पर उसके बड़े भाई उदयसिंह ने उसके और पिता के विरुद्ध होकर उन लोगों की सारी आशायें मिट्टी में मिला दीं। उदयसिंह अकबर की सेना में "हज़ारी" के पद पर नियुक्त हुआ। नियुक्त होने के साथ ही उसने जोधपूर पर (पिता पर) चढ़ाई की। मालदेव, इस वृद्धावस्था में असीम वीरता दिखाने पर भी जोधपुर की रक्षा न कर सके। अन्त को पुत्र से पराजित होकर कुछ ही दिन बाद वे स्वर्ग सिधारे।

उदयसिंह मुग़ल-महीप का सेनापति होने की बड़ी ही प्रबल अभिलाषा रखता था। अकबर ने भी उसीको मारवाड़ का सिंहासन सौंपना स्थिर कर लिया था। मालदेव के मरने के अनन्तर चन्द्रसेन, उदयसिंह के साथ युद्ध करने को प्रस्तुत हुआ

*मेवाड़ के इतिहास में मालदेव के ज्येष्ठ पुत्र उदयसिंह का भेजा जाना लिखा है। पर मारवाड़ के इतिहास और फ़रिश्ता में चन्द्रसेन का जाना लिखा है। उदयसिंह ने अकबर की आधीनता को स्वीकार कर लिया था। शायद इसीसे मेवाड़ के इतिहासों में उसके विषय में वैसा उल्लेख हुआ है।

और अन्त में पराजित होकर मृत्यु को प्राप्त हुआ। १५६९ ई० में उसकी मृत्यु हुई *। कोई कोई इसी समय से उदयसिंह को मारवाड़ के राज्य का मिलना मानते हैं; और कोई कोई चन्द्रसेन के पराजित होने के समय से। उदयसिंह सिंहासनारोहण करने के साथ ही सम्पूर्ण रूप से बादशाह के अधीन हो गया। यहां तक कि अकबर का विशेष प्रियपात्र होकर उसने अपनी बहिन जोधाबाई तक को अकबर के करकमलों में अर्पण कर दिया। इस घटना से सारे राजस्थान में जैसे जैसे उदयसिंह की बदनामी फैलने लगी, वैसे ही वैसे उदयसिंह बादशाह का अधिकाधिक अनुग्रह-भाजन होता गया। अकबर ने जोधाबाई को अपनी बेगम बनाकर उस पर असीम प्रीति और उसके साथ असीम सहानुभूति दिखलाई। अकबर इसलाम धर्म्म की सब बातों को नहीं मानता था। उसे हिन्दुओं के धर्म्म की भी कई बातें पसन्द थीं। हिन्दुओं की उपेक्षा करना, या उन पर अन्याय करना, उसे नहीं अच्छा लगता था। इसी उदार नीति के वशीभूत होकर अकबर ने जोधाबाई को स्वधर्म्म-प्रतिपालन में कभी बाधा नहीं दी। जोधाबाई के इच्छानुसार उसके लिए उसने एक उत्तम महल अलग बनवा दिया था। आगरे के क़िले के भीतर जोधाबाई का हिन्दू-महल देखने से उनके स्वधर्म्मानुराग और अकबर की उदारता का अच्छा प्रमाण मिलता है।

मैं ऊपर कह आई हूं कि इन्हीं जोधाबाई को लोगों ने सलीम की बेगम दूसरी जोधाबाई मान कर भारी भूल की है। कितने हीं इतिहासवेत्ता पंडितों का भी यही मत है, किन्तु यह मत अत्यन्त सन्देहपूर्ण मालूम होता है। इस बखेड़े की जड़ टाड साहब बहादुर हैं। उन्होंने अपने ग्रन्थ में जोधाबाई पर टिप्पणी देते समय जोधाबाई को शाहजहां की माता लिखा है*। यहां पर टाड साहब ने दो भूलें की हैं। पहले तो उन्होंने जहांगीर के स्थान पर शाहजहां लिखा, दूसरे जोधाबाई को उनकी माता कहा। बहुत लोग शाहजहां शब्द को संशोधित करके जहांगीर कर डालते हैं। संभव है, इसी तरह लोग जोधाबाई को जहांगीर की माता कहने लग गये हों। मैलेसन साहब ने अपनी पुस्तक "अकबर" में भी इसी बात का उल्लेख किया है। परन्तु मेवाड़ और मारवाड़ के इतिहास में जहांगीर का जोधाबाई के पुत्र होनेका कुछ भी उल्लेख नहीं है। इन इतिहासों में शाही घराने की हिन्दू-बेगमों के गर्भ से उत्पन्न हुये पुत्रों का उल्लेख है। किन्तु पूर्वोक्त बातों का उनमें कहीं भी पता नहीं है।

फ़रिश्ता ने सलीम का जन्मवृत्तान्त स्पष्ट रूप से लिखा है। उसके देखने से विदित होता है कि सलीम अकबर की प्रियतमा बेगम सुलताना के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। बादशाह के कई सन्तान शैशव की अवस्था ही में मर चुके थे। इससे शेख़ सलीम की कृपा और उसके आशीर्वाद से पुत्र के चिरजीवित होने पर उसका नाम भी अकबरने सलीम ही रक्खा †।

फ़रिश्ता के देखने से विदित होता है कि सलीम अकबर की प्यारी बेगम सुलताना का ही पुत्र था। जोधाबाई का सुलताना नाम से इतिहासों में कहीं भी परिचय नहीं पाया जाता। इस के अतिरिक्त, इस सम्बन्ध में, और भी एक आपत्ति उपस्थित होती है। फ़रिश्ता के कथनानुसार

---

* टाड कृत राजस्थान के दूसरे खण्ड में एक स्थान पर सम्वत् १६७१ अर्थात् १६१५ ईसवी में मालदेव की मृत्यु लिखी ह। पर यह भूल है, क्योंकि सम्वत् १६५१ अर्थात् १५९५ ई० में उदयसिंह की मृत्यु हुई और १६०५ ई० में अकबर की। अतएव इन लोगों के उपरान्त मालदेव का परलोकगामी होना सम्भव नहीं।

* The magnificent tomb of Jodbai, the mother of Shah Jehan, is at Secundra, near Agra, not far from that in which Akber's remains are deposited. Tod, Vol. I, p. 231.

† From that city (Agra) he went to visit Sheik Selim Chisti in the village of Sikari, questioned him according to the ceremonies, and was told, it is said, that he would soon have an issue that would live and prosper; all the children which were born to him before that time dying in their infancy, soon after. The favourite Sultana became pregnant, and upon the 17th of Rabbi-al-awal in the year 977, she was brought to bed of a son, who was named Sultan Selim (Dow's Ferishta, Vol. I, p. 257.)

सलीम ने ९७७ हिज़री, अर्थात् १५६९ ई० में, जन्मग्रहण किया। यही मत निज़ामुद्दीन अहमद का भी है *। राजस्थान में उसी साल मालदेव का देहान्त होना लिखा हुआ है। उस समय उदयसिंह सिंहासनासीन हो चुके थे कि नहीं, सो भली भांति ज्ञात नहीं होता। सिंहासनासीन हो जाने के बाद उन्होंने जोधाबाई को बादशाह के हाथ में सौंपा था। मालदेव की जीवितावस्था में जोधा-बाई का विवाह अकबर के साथ नहीं हुआ †। १५६९ ईसवी में सलीम का जन्म जोधाबाई के गर्भ से होना किसी भांति प्रमाणित नहीं होता। परन्तु प्राइस साहब के द्वारा अनुवादित जहांगीर के आत्मचरित के अनुसार जहांगीर का जन्म ९७८ हिजरी में हुआ था। अतएव ९७८ हिजरी में जोधाबाई के गर्भ से जहांगीर का जन्म होना असम्भव नहीं कहा जा सकता। किन्तु निज़ामुद्दीन अहमद ने सलीम के जन्म-समय की कविता का अर्थ ९७७ लगाया है ‡। यदि ९७७ हिजरी में सलीम का उत्पन्न होना मान लिया जाय तो उक्त आत्म-जीवनी का अनुवाद ठीक नहीं कहा जा सकता। जहांगीर ने अपनी जीवनी में अपने अन्यान्य भाई बहनों का जन्म-वृत्तान्त लिखा है। किन्तु अपनी मा के नाम का परिचय उसने कहीं भी नहीं दिया। फ़रिश्ता और निज़ामुद्दीन अहमद इत्यादि के ग्रन्थों में भी लिखा है कि "सलीम और मुराद के जन्म होने के बाद जोधपुर के युवराज चन्द्रसेन ने बादशाह की आधीनता को स्वीकार किया"। इससे स्पष्ट बोध होता है कि सलीम के जन्म होने के बाद जोधा-बाई का विवाह हुआ था।

* On Wednesday, 18th Rabi-ul-awal, 977, and the fourteenth year of the reign, when seven hours of the day had passed, the exalted prince Sultan Salim Mirza was born in the house of Shaikh Salim Chisti. (Nizam-ud-din Ahmad's Tabukat-i-Akbari. Elliot's History of India, Vol. V., p. 324.)

† Maldeo, though he submitted to acknowledge the supremacy of the Emperor, was at last spared the degradation of seeing a daughter of his blood bestowed upon the opponent of his faith. He died soon after; the title was conferred on his son, which sealed the independence of Maroo. Tod, Vol. II, p. 29.

‡ "Khawaja Hussain composed an ode, of which the last line contained the date of the Emperor's accession, and the second the date of the prince's birth. The Khawaja received a present of two lakhs of *tanks* for this ode."

फ़रिश्ता और निज़ामुद्दीन के मतानुसार सुलतान मुराद ने ९७८ हिजरी की तीसरी तारीख़ को जन्म ग्रहण किया था। निज़ामुद्दीन ने इस विषय में मौलाना क़ासिम की एक कविता की बात लिखी है। उस कविता की प्रथम पंक्ति में सलीम के और दूसरी में मुराद के उत्पन्न होने की बात है। ९७८ हिजरी की तीसरी मुहर्रम को मुराद के उत्पन्न होने से सलीम का उसके पीछे जन्म ग्रहण करना सर्वथा असम्भव है। जहांगीर की आत्मजीवनी में उसके जन्म ग्रहण करने की तारीख़ और महीने से फ़रिश्ता के मत का समर्थन होता है। पर आत्मजीवनी का अनुवाद सन्देह-पूर्ण है। प्राइस उस तारीख़ को १८ अगस्त सन् १५७० ईसवी कहते हैं।

अब इस स्थान पर मैं जोधाबाई, अर्थात् इस लेख की नायिका, का कुछ हाल लिखती हूं। वे बीकानेर के राजा रायसिंह की कन्या थीं। बीकानेर का राजवंश भी राठौर घराने में है। रायसिंह ने मुग़ल सम्राट् का सेनापति होकर अनेक स्थानों में असीम वीरता और पराक्रम दिखाया था। अहमदाबाद के शासनकर्त्ता मिर्ज़ा महमूद को उसने द्वन्द्व-युद्ध में मारा था। उसने अच्छे गौरव को प्राप्त किया था। उसके उक्त कार्य से प्रसन्न हो कर अकबर ने उसकी कन्या के साथ शाहज़ादा सलीम का विवाह कर दिया। रायसिंह की यही अनुपम कन्या इतिहास-प्रिय पाठकों के निकट जोधाबाई के नाम से प्रसिद्ध हो रही है। फ़रिश्ता और जहांगीर की आत्मजीवनी में इस विवाह का उल्लेख है। जोधाबाई सलीम की प्रियतमा थी। भुवनमोहिनी मेहरुन्निसा को बेगम बनाने पर भी जहांगीर ने जोधाबाई के प्रति कभी उपेक्षा नहीं दिखलाई। जोधाबाई के कथनानुसार ही जहांगीर ने मिर्ज़ा जयसिंह को आमेर का राज्य प्रदान किया था *। जहांगीर बहुत सी बातों

* "At the instigation of the celebrated Jodbai (daughter of Rai Sinh of Bikanir), the Rajputini wife of Jehangir, Jay Sinh, grandson of Jagat Sinha (brother of Mann) was raised to the throne of Amber, to the no small jealousy, says the chronicler of the favourite queen, Nur Jehan." (Tod, Vol. II, pp. 354-55.)

जयसिंह के राज्य देने के विषय में राजस्थान के इतिहास

में जोधाबाई के परामर्शानुसार ही काम करता था। जब तक मेहरुन्निसा (नूरजहां) शाही महल में नहीं आई थी, तब तक जहांगीर जोधाबाई के प्रति अत्यन्त अनुरक्त था। नूरजहां के आने पर जोधाबाई के प्रति जहांगोर का पूर्वानुराग कुछ कम हो गया था। ज्योतिर्मयी नूरजहां को पा कर जहांगीर सिर्फ जोधाबाई को ही नहीं भूला, किन्तु अपने आप को भी वह भूल गया। जोधाबाई के अतिरिक्त शाही महलों में और भी कई राजपूत बेगमें थीं। उनमें से एक अम्बर के राजा विहारीमल की कन्या और दूसरी मारवाड़ की एक राज पुत्री थी। विहारीमल सुप्रसिद्ध राजा मानसिंह के पितामह थे। विहारीमल की कन्या से .खुसरो का जन्म हुआ और अकबर के मंत्री आज़िमख़ां की लड़की .खुसरो से ब्याही गई। अकबर के देहान्त होने पर राजा मानसिंह और आज़मख़ां सलीम के बदले .खुसरो को बादशाह बनाने की चेष्टा में थे। परन्तु सफलता प्राप्त न हुई। सलीम की दूसरी बेगम मारवाड़ की राजकुमारी * के गर्भ से .खुर्रम उत्पन्न हुआ था।

यहां तक जो कुछ लिखा गया उससे सिद्ध है कि जोधाबाई जोधपुर की राजकन्या नहीं, बीकानेर की राजकन्या थी। इस विषय में कर्नल टाड ने भी कुछ कम भूलें नहीं की हैं। उनका कथन है कि "जहांगोर का ज्येष्ठपुत्र सुलतान परवेज़ मारवाड़ की किसी राजकुमारी से और दूसरा पुत्र खुर्रम अम्बर की राजकुमारी से उत्पन्न हुए थे" *। टाड साहब कीउक्त दोनों ही बातें भ्रमपूर्ण हैं। क्योंकि परवेज़ किसी हिन्दू बेगम के गर्भ से नहीं उत्पन्न हुआ था और .खुर्रम की माता जोधपुर की राजकुमारी (उदयसिंह की कन्या) थी। इस प्रबन्ध से दो जोधाबाइयों का होना की सिद्ध है। † वङ्गमहिला।

प्रभात-प्रभा।

[१]

शोभा-भरी, रुचिर, चारु, निशान्त की है
वेला, मनोहर, अतिप्रिय, दर्शनीया।
वापी-तड़ाग-जल के नव नीरजों पै
भृङ्गावली मधुर तान सुना रही है॥

[२]

श्यामा, प्रवीण पिक, मंजुल मिष्टभाषी,
केकी कपोत-कुल केलि-कला-विदग्ध।
आनन्द-युक्त करते उठ नृत्य-गान,
सङ्गीत-गर्व हरते नर-नारियों का॥

में एक कौतूहलपूर्ण घटना का उल्लेख है। शाही महल के एक बरामदे में जहांगीर जोधाबाई के साथ बैठा था। बादशाह ने एक अल्पवयस्क रातपूत को "अम्बरराज" कह कर सलाम किया और उक्त राजपूत से कहा कि तुम जोधाबाई को सलाम करो। राजपूताने के नियमानुसार महाराजा जयसिंह ने जोधाबाई को सलाम करना अस्वीकृत किया। जयसिंह ने बादशाह से कहा "आपके अन्तःपुर में जितनी महिलायें हैं, सब को मैं आदाब बजा लाऊंगा, पर जोधाबाई को कदापि नहीं। जोधाबाई इस बात पर खिलखिलाकर हंस पड़ी और कहने लगी, "इससे कुछ हानि-लाभ नहीं है। मैं तुम्हें आमेर का राज्य प्रदान करती हूं।"

* टाड साहब इत्यादि बिहारीमल की (भगवानदास के पुत्र की) कन्या को .खुसरो की माता, आमेर की किसी दूसरी राजपुत्री को .खुर्रम की माता, और जोधाबाई को परवेज़ की माता कहते हैं। अनेक स्थानों में विहारीमल की कन्या को अकबर की बेग़म कह कर लोगों ने परिचय दिया है। पर जहांगीर की निज-लिखित जीवनी पाठ करने से पूर्वोक्त सब बातों में भूल पाई जाती है। इस विषय में नीचे का उल्लेख पढ़ने लायक़ है।

"The first of the Rajpoot chieftains, who became attached to the Government of my father, Akbar, was Bharmul, the grandfather of Rajah Mann-Sinh, and pre-eminent in his tribe for courage, fidelity, and truth. As a mark of distinguished favour, my father placed the daughter of Raja Bharmul in his own palace, and finally espoused her to me. It was by this princess I had my son Khussrou * * * Next to her, by Saheb Jamdul, the niece of Zeyne Khaun Khonkah, I had a son born at Kabul, on whom my father bestowed the name of Parveiz * * * and by the daughter of Moutah Rajah (Jagat Gossaeine) was born my son Khourroum.—M. Price's Memoirs of the Emperor Jehangir, pp. 19-20.

* "Sultan Purvez, the eldest son and heir of Jehangir, was the issue of a princsss of Marwar, while the second son Khoorum, as his name implies, was the son of a Cuchwaha princess of Amber."—Tod, Vol. II, p. 42.

† यह प्रबन्ध वङ्गभाषा के "ऐतिहासिक चित्र" नामक मासिक पत्र का मर्मानुवाद है।

[३]

गुञ्जार है पुहुप की नव डालियों पै
छोटी बड़ी बहुतसी मधुमक्खियों का।
वीणा, मनोहर, नया, अति ही सुरीला,
माने मनोज्ञ बजता वन-बीच में है॥

[४]

धीरे समीर बहती जनमोदकारी,
माधुर्य्य, सौरभित, चन्दन-गन्ध-युक्त।
पंखा मनोज्ञ अपने कर से हिलाती
माने स्वयं प्रकृति विस्तृत-विश्व-माता॥

[५]

जो थी दशा जगत की अति भीतिकारी,
शून्य श्मशानमय जो गृह दीखते थे।
उद्यान-बाग-वन जो अति खिन्न से थे,
हैं वे समस्त अब सुन्दरता-समूह॥

[६]

निशिचर रजनी में शोर थे जो मचाते—
अतिशय भयकारी उग्र उल्लू शृगाल।
निविड़-विपिनचारी घोर भालू-वराह;
अब सब वन में वभीतसे जा छिपे हैं॥

[७]

सुखकर हरियाली बाग़की है निराली,
प्रमुदित विहगाली व्योम में खेलती है,
नवल जल-कणों से पूर्ण चारों दिशायें
कुसुमित कलियों से दिव्य-शोभामयी हैं॥

[८]

क्याही है नभकी विचित्र अतिही शोभा मनोहारिणी
प्रातःकाल प्रबाल-भानु-किरणों की लालिमा से खिली।
वृक्षों की वर पंक्ति है विपिन में फूलों फलों से झुकी;
प्यारे शुभ्र सरोज सुन्दर सरों के नीर में हैं नये॥

[९]

आते हैं दिननाथ व्योम-पथमें प्राची दिशासे अहो;
लाते हैं सुख सम्पदा जगत को सौभाग्य कन्तिच्छटा।
आनन्द प्रियमित्र के उदय से पाते सभी जीव हैं;
पूजा में रत है समस्त जगत प्रोत्साह आल्हाद से।

[१०]

धारा के मिस से समस्त झरने पाद्यर्घ हैं दे रहे;
वृक्षों का न वराजि फूल-फल-की डाली लिये है खड़ी।
गाते हैं स्तुतिपाठ भृङ्ग, वनकी सारी विहंगावली
पूजा-हेत-समीर-नारि नवला आगे, विलोको, चली॥

सत्यशरण रतूड़ी।

हंसान्योक्तियां।

वक कुल को कल कल सुने हंस न होहु अधीर।
तुम बिन दूसर क्षीर सों को विलगै है नीर॥१॥

तुम हूं जो आलस करो क्षीर-नीर-निरधार।
तौ फिरि को जग दूसरो कुल-व्रत पालन हार?॥२॥

यद्यपि ये सिगरे रहैं पंकज, मीन, सिवाल।
पै मानस शोभा घटै जो तजि देत मराल॥३॥

कछुक दिना धीरज धरो फिरि सोइ ऐहै काल।
जैहो अपने देस को एहो मीत मराल॥४॥

जे सुख सों मानस बसे चले अनोखी चाल।
तेई हाय मराल ये परे बिहाल सिवाल॥५॥

छोड़ि मानसर सरन तकि जो कहुँ बसिहहु जाय।
तौ मराल हँसिहैं तुम्हैं कोकिल-काक-निकाय॥६॥

हंस चलो निज देसको जहां बसे सुखसार।
यहां तुम्हारे गुनन को कोउ न जाननहार॥७॥

गुण बहु तुम में हंस जू हैं अतिशय गम्भीर।
अनुचित मानस त्यागिबो आय परै जब भीर॥८॥

यद्यपि बहु गुण हंस तव मानस किये निवास।
तदपि भूलि नहिँ कीजियो मधुकर के सँग वास॥९॥

हाथ मींजि पछिताइ है परे वंश-प्रशंस।
मान-सरोवर सून कै जब उड़ि जैहै हंस॥१०॥

हौंय नीच नहि जे तजैं तजि गहते अति नीच।
सरवर जो तजु हंस तो फेरि न आव नगीच॥११॥

हंस-चाल को निन्दरैं आदरते गज-चाल।
कहिहैं तिन्हैं गँवार सब कछू न हानि मराल॥१२॥

भले कुलन की हंसजू यह न भली कछु रीति।
क्षीर-नीर दोऊन की जो बिलगावत प्रीति ॥१३॥

श्यामनाथ शर्मा।

महाश्वेता।

[१]

यह सुन्दरी कहां से आई;
सुन्दरता अति अद्भुत पाई।
सूरत इसकी अति भोली है;
और न इसकी हमजोली है॥

[२]

इसका चरित बाण ने गाया;
जिसने कादम्बरी बनाया।
यह कोमल किन्नर-कन्या है;
रूप-राशि गुण-गण-धन्या है॥

[३]

हेमकूट पर्व्वत के ऊपर
उपवन एक चैत्ररथ सुन्दर।
वहीं विमल अच्छोद सरोवर;
उसके तट शिव-भवन मनोहर॥

[४]

वहां एक दिन यह जाती थी;
मग में निज छवि छिटकाती थी।
युवा तपस्वी पुण्डरीक ने
(कुसुम-कली को चञ्चरीक ने)

[५]

देख इसे सब सुधि बुधि खोई;
शुद्ध-शीलता सारी धोई।
इसने भी अनुराग दिखाया;
हार उसे अपना पहनाया॥

[६]

लौट गेह निज जब यह आई;
पीड़ा पुण्डरीक ने पाई।
विरह-वन्हि ने उसे जलाया;
इससे वह परलोक सिधाया॥

[७]

इस विपत्ति से यह अकुलानी;
हुई उसी क्षण से दीवानी।
पिता और माता को छोड़ा;
सब सम्बन्ध जगत से तोड़ा॥

[८]

प्रिय से प्रेम लगाया इसने;
अङ्ग विभूति रमाया इसने।
जटा-जूट लटकाया इसने;
मुनि-वर-वेश बनाया इसने॥

[९]

पहनी पुण्डरीक की माला;
आई उसी विपिन में बाला।
पशुपति की पूजा आराधी;
महा कठोर साधना साधी॥

[१०]

कर वीणा ले नित्य बजाती;
हर-गिरिजा को नित्य रिझाती।
नित्य नये उनके गुण गाती;
कन्द-मूल खाकर रह जाती॥

[११]

वहां इसी विध यह सुकुमारी;
करती रही तपस्या भारी।
बहुत दिनों में इसका प्यारा
मिला इसे, खोया दुख सारा॥

[१२]

उसे शशी ने शाप दिया था;
चन्द्रलोक में खींच लिया था।
अन्त उसीने उसे पठाया;
दोनों का सन्ताप मिटाया॥

[१३]

चित्र महाश्वेता का सुन्दर
रविवर्म्मा ने विशद बनाकर,
अतिशय कौशल दिखलाया है;
भाव ख़ूबही बतलाया है॥

नरक-गुलज़ार ।

अयोध्या में राजा रामचन्द्र ने जन्म लिया। ऋषिलोग कहने लगे, एक 'राम' नाम से कोटि ब्रह्मवध के पाप नाश हो जाते हैं। यह समाचार सब जगह फैल गया। परन्तु धर्म्मराज को बड़ी चिन्ता हुई। वे सोचने लगे कि कहीं नौकरी न छुट जाय।

दूसरे की बुराई से होली का सा आनन्द अनुभव करना नारद का स्वभाव है। नारद ने सोचा, परीक्षा करके देखें तो सही, ऋषि का वचन सत्य होता है या नहीं। यह सोचकर नारद यमलोक की तरफ़ चले।

फाटक के पास पहुंचने पर बाहर ही से नारद ने पुकार कर पूछा—"भाई साहब, किस सोच में बैठे हो?"

धर्म्मराज—"कुछ नहीं। आइए, विराजिए"।

नारद—"नहीं, इस जन्म में और तुम्हारे यहां आने की इच्छा नहीं होती। भला, तुमने एक ख़बर सुनी है? रामचन्द्रजी ने जन्म लिया है"।

इतना कहना ही था कि जिस तरह मधु-मक्खी के छत्ते में कोई छड़ी घुसेड़ दे, और भन भन करती हुई लाखों मक्खियां निकल पड़ें, उसी तरह दूर से लाखों मनुष्यों की खलबली सुन पड़ने लगी और प्रेतराज्य की धुँधली नीली रोशनी में आदमियों के दल बादल उमड़ कर निकलते हुए देख पड़ने लगे। 'राम'-नाम भर नारद के मुख से सुनना था कि मान्धाता के वक्त से आये हुए लाखों मनुष्य फाटक के पास आकर जमा होने लगे। फाटक खुल गया। किसीके रोके वह न रुका। नारद जी अन्तर्धान हो गये।

मामूली संख्या से अधिक कैदी इकट्ठे हो जाने से जेल के दारोग़ा, लाला चित्रगुप्त, को कई बर्षों से भत्ता (Extra allowance) मिल रहा था। वह अब बन्द हो गया। प्रधान यमदूत (Head warder) की तनख़्वाह घट गई। साधारण कर्म्मचारी (General establishment) की संख्या घटा दी गई। मारे सोच के धर्म्मराज की पलक रात भर न लगने लगी। दिन को खाना उन्हें हराम हो गया।

कुछ दिनों बाद नारद जी का पुनरागमन हुआ। धर्म्मराज गाय की तरह कांपने लगे कि यह पाखण्डी उस दिन तो महा अनर्थ कर गया। आज न जाने फिर क्यों आया है!

नारद—"भाई साहब, डरिये मत। मैं बड़े साहब (ब्रह्मा) के पास तुम्हारी सिफ़ारिश करने गया था। उन्होंने कहा, हट बेवक़ूफ़, देवताओं के दफ़्तरों में कहीं रिडकशन (तख़फ़ीफ़) होती है? बहुत बड़ी सख़्ती हुई तो एक युग भर के लिये भत्ता (Personal allowance) भर कट जाया करेगा। उनसे कहना, फिर ज़रा अक़्ल लड़ावें। चेष्टा से कोई भी काम असाध्य नहीं। सो, भाई साहब, सोचिए मत; अपना काम कीजिए। मैं चला।"

जो लोग पापियों के साथ सारा जीवन बिताते हैं, वे ख़ूब चालाक होते हैं। उनसे चुपचाप नहीं रहा जाता। धर्म्मराज ने बहुतेरे हीले हवाले करके वार्डर लोगों को पृथिवी पर कई जगहों में भेज दिया। यमदूत न० १ धर्म्मध्वजी बनकर धर्म्म-संस्थापन करने की चेष्टा करने लगा। यमदूत न० २ सभ्यता विस्तार की फ़िक्र में लगा। यम-दूत न० ३ साम्राज्य-नीति प्रचार करने लगा। न० ४ देशहितैषिता फैलाने लगा। इत्यादि।

लगभग एक युग बीत गया, धर्म्मराज के पास काम बहुत कम है। दो पहर के वक्त कुरसी पर बैठे बैठे गुलाबी झपकियां आ जाती हैं। तौभी नौकरी का मामला ठहरा, और उस पर मामता भी हो गई है। घर पर ज़मीदारी चाल से बिछौने पर लेट कर नींद नहीं आती। ऐसे समय, दूत न० १ ने सामने आकर सलाम किया।

धर्म्मराज—"कहो, क्या ख़बर?"

दूत नं० १—"ग़रीबपरवर, मैं पृथिवी पर धर्म्मस्थापन कर आया हूं।"

धर्म्मराज—"हरे, हरे! यह क्या किया? लोग धार्म्मिक हो जाने से तो हमारा महकमा ही टूट जायगा। नौकरी भी छुट जायगी। पापियों ही के बढ़ने में भलाई है, सो बात क्या तुम भूल गये?"

दू—"हुज़ूर, धर्म्म ही से तो लोग पापी बन जाते हैं; अन्धे हो जाते हैं।"

ध—"साफ़ साफ़ कहो।"

दू—"धर्म्मावतार! मैंने जाकर देखा कि पृथिवी पर लोग बड़े चैन से रहते हैं। बहुत से लोग एकही ईश्वर पर विश्वास करते हैं। परन्तु कोई कहता है ईश, कोई ईसा, कोई कृष्ण, कोई क्राइस्ट। मैंने सबको समझाया कि यह पृथक्-भाव ही असल चीज़ है। बस, वे तुरन्त वैसाही समझने लगे। मैंने अपने जी में सोचा, चलो, इसबार तो हम लोग बच गये। इन ज़रा ज़रा सी भेद की बातों पर जड़ जमाकर धर्म्मध्वजी लोग अपने को अभ्रान्त और दूसरों को भ्रान्त समझने लगे; आपस में गाली गुफ्ता, मार पीट और ख़ून ख़राबी की नौबत पहुंची। कितनेही धार्म्मिक जीते जी अधर्म्मियों को आग में डाल डाल भूनने लगे। कितने ही लोग एक हाथ में तलवार, दूसरे हाथ में धर्म्मपुस्तक लेकर घूमने लगे। साकार, निराकार, शाक्त, वैष्णव, बौद्ध, जैन—एक दूसरे से यों भिड़गये जैसे सांप से नेउला भिड़जाता है। वे परस्पर एक दूसरे पर ऐसे टूटे जैसे जंगली चूहे पर बनबिलाव टूटता है।

धर्म्मराज ने घबराकर पूछा, "तो साम्यवाद का क्या हुआ?"

दू—"क्यों? मैंने एक कहानी सुनी है। एक राक्षस किसी मुनि के लड़के को खाने दौड़ा। मुनि ने लड़के को सरसों के रूप में बदल दिया। राक्षस भी तुरन्त कबूतर बनकर सरसों के चुग लेने की चेष्टा करने लगा। तब मुनि ने उस सरसों पर और ढेरों सरसों डाल दिये। तब वह कबूतर रूपी राक्षस उतने सरसों को एक साथ न चुग सका, और अपने मतलब के सरसों को भी अलग न निकाल सका। इसी कहानी वाले सरसों की तरह पृथिवी में ढेरों धर्म्मग्रन्थ और धर्म्ममत बिखरे पड़े हुए हैं। इससे लोग इस छोटी सी साम्यवाद की बात को अपने मनमाने धर्म्मतत्व के झगड़ों से चुनकर नहीं निकाल सकते। और असल बात तो यों है कि सब लोग उन सब धर्म्मतत्वों को मानते भी नहीं; और किस तत्व से अभीष्ट सिद्ध हो सकता है, सो भी वे अच्छी तरह नहीं जानते। वे कहा करते हैं कि नाना मुनियों के मत भी नाना प्रकार के हैं। और धर्म्म का तत्व गुफ़ा के भीतर छिपा हुआ है, इत्यादि।"

ध—"फिर क्या हुआ? कहो।"

दू—"जनाब आली! गुलाम के पृथिवी पर इस तरह धर्म्मसंस्थापन करदेने से पाप के राज्य ने फिर पहले की तरह मज़बूत बुनियाद पकड़ ली है। काम का राज्य नहीं घटा। क्रोध-राज्य में पूर्ववत् हत्या हुआ करती है। लोभ की रियासत में ख़ूब चोरी हो रही है; और यह रियासत पश्चिम की तरफ़ ख़ूब बढ़ती जाती है। मोह, मद, मात्सर्य का पूर्व्व की तरफ़ विस्तार हो रहा है।"

ध—"वाह, शाबाश।"

सभा में बैठे हुए सभासद लोग—"शाबाश! ख़ूब किया! वाह वाह!"

जब यह आनन्द-कोलाहल कुछ ठंढा पड़ा, तब यमदूत नं २ ने आकर लम्बा सलाम किया, और हाथ बांध कर वह धर्म्मराज के सामने खड़ा हो गया।

ध—"क्या ख़बर है?"

दू—"धर्म्मावतार, पृथिवी पर मैं ऊंची सभ्यता फैला आया हूं।"

ध—"अरे, तुमने तो सत्यानाश कर दिया! लोग उन्नत और सभ्य हो जायंगे तो पाप घट जायगा। उससे तो हम लोगों ही की हानि है।"

दू—"मैं ने जो सभ्यता फैलाई है, वह देखने ही भर को है। ऊपर से तो वह ख़ूब चटकीली और भड़कदार है। पर भीतर उसके मैला भरा हुआ है। 'आत्मानं सततं रक्षेत्' इस मूल-मन्त्र की मैंने मूल व्याख्या समझा दी है। थोड़ी मेहनत से बहुत नरहत्या क्यों कर हो सकती है—आत्मरक्षा के बहाने ऊंची सभ्यता का यही मतलब मैंने समझाया है। आज कल के सभ्य देशों में उन्नत ज्ञान, जिसे विज्ञान कहते हैं, इसी उद्देश्य से तरह तरह के अग्निबाण, अग्निबोट, अग्न्यस्त्र और ग़ुब्बारे बना रहा है। इस सभ्यता के प्रभाव से सभ्य देशों में दस पांच आदमी विलास में लोटा करते हैं; लाखों लखपती कुवेर के अवतार बन जाते हैं; और करोड़ों लोग पेट भर अन्न भी न पाकर, जाड़े पाले में नंगे रह कर, रात रात भर कांपा करते हैं। इन सभ्य मनुष्यों में शराब पीना ही शरीर की शोभा है, आत्मसुख ही मूल मन्त्र है, और मन की सारी बुरी वृत्तियों की लगाम ढीली कर देना ही जीवन का सर्वस्व है। इसीसे मैं कहता हूं कि इस सभ्यता का भीतरी भाग कोयले से भी अधिक काला है। इसीमें तो हम लोग की भलाई है।"

सब लोग—"वाह वाह! शाबाश!"

तब दूत नं ३ हाज़िर हुआ और झुक कर उसने सलाम किया।

ध—"तुम क्या ख़बर लाये हो?"

दूत नं ३—"हुज़ूर, मैं पृथिवी पर देश-हितैषिता फैला आया हूं।"

ध—"हैं, यह तुमने क्या कर डाला?"

दू—"हुज़ूर, कोई डर की बात नहीं हैं। पृथिवी पर देश अनेक हैं। पर भिन्न भिन्न देशों की देशहितैपिता अपने ही अपने देश में व्यापक है। एक देश दूसरे के विपरीत काम करता है। हर देश में साम्प्रदायिक जोश (Party feeling) और गाली गलौज की धार ख़ूब ज़ोर से बह रही है। और जो सचमुच दीन दशा में है, जहां पर देशहितैपिता का सचमुच ही अभाव है, वहां पर फूट की खेती होती है।"

सब लोग—"वाह वाह, शाबाश।"

इसी तरह सब यमदूत एक एक करके अपनी अपनी रिपोर्ट पेश करने लगे। किसीने कहा मैं संवादपत्र की एडिटरी करता हूं। किसीने कहा मैंने 'नीति-संस्कार' फैलाया है; किसीने कहा 'विचार संस्कार'; किसीने "आयुर्वेद संस्कार"। इसी तरह सब लोग अपनी अपनी कहानी कह कर गुल मचाने लगे।

देखते देखते इतने यमदूतों का कटक जमा हो गया और वाह वाह की इतनी धूम मच गई कि अपना पराया सुन पड़ना असम्भव हो गया। जब ज़रा जोश ख़रोश कम हुआ, यमराज और सभासदों ने ताली बजा बजा कर कहा "शाबाश, शाबाश! अब नरक जल्द गुलज़ार हो जायगा"।*

पार्वतीनन्दन।

व्योम-विहरण।

[२]

फ्रांस में एक साहब हैं। आपका नाम व्होष्ट है। व्योम-विहारिणी विद्या में आप बड़े कुशल हैं। उन्होंने उड़ने की एक कल बनाई है, और कहते हैं कि उसका उड़ना परीक्षा-सिद्ध है। इसमें पाँच जोड़ा जालीदार पर लगे हैं। हर एक पर (फैलाने पर) ९ फुट लम्बा और २० इञ्च चौड़ा है। इन परों की रचना चिड़ियों के परों के समान है। उड़ने में वे एक के अनन्तर एक ऊपर को उठते हैं, और प्रति सेकण्ड में तीन बार हिलते हैं। इस कल में चिड़ियों की पूंछ के समान दो पतवार भी हैं। यह कल यल्युमीनियम नामक हलकी धातु की बनी है। एक झील को पार करने में इसकी परीक्षा सर्व-साधारण के सामने होनेवाली थी। इस परीक्षा का फल विदित नहीं हुआ।

---

* अनुवादित।

अमेरिका के अध्यापक ब्यल बिजुली की विद्या में बड़े प्रवीण हैं। अध्यापक लैंगली के साथ वे भी एक व्योमविहारिणी कल, अर्थात् पवन-नौका, बनाने में लगे हैं। वे कहते हैं कि उन्होंने इस आकाशगामिनी विद्या की कठिनाइयों को हल कर लिया है; और शीघ्र ही अपनी उड़ने वाली कल को दिखला कर लोगों को वे चकित कर देंगे। वे यह भी कहते हैं कि ग़ुब्बारे की तरह की कोई कल आकाश में नहीं उड़ सकती। ग़ुब्बारा वायु से हलका होने के कारण उसका यथेच्छ उड़ाना सर्वथा असम्भव है। चिड़ियां हवा से भारी होती हैं; परन्तु वे ख़ूब उड़ती हैं। इसी लिए उनके उड़ने के नियमों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करके हवा से भारी कल का बनाने वाला ही इस विषय में सफल-मनोरथ हो सकता है। वे पतङ्ग की तरह की एक कल बना रहे हैं। उसके साथ एक हलका यञ्जिन भी रहेगा। अभी वे इस कल के विषय में अधिक और कुछ नहीं बतलाना चाहते। बहुत वर्षों से आकाश-विहार की कठिनाइयों को हल करने में वे लगे हैं। उनके इस अश्रान्त श्रम का फल कुछ ही दिनों में प्रकाशित होने वाला है।

अमेरिका के यूटिका नगर के निवासी अध्यापक मायर ने, सुनते हैं, आकाश में उड़ान करनेवाली टारपोडो नामक एक नौका बना भी ली है। वह सेण्ट लुई नाम की प्रदर्शनी में दिखलाई जानेवाली थी। वह पक्षी के समान उड़ती है। वह स्क्रू नामक व्यावर्तन कीलकों के द्वारा उड़ती है। ये कीलक एक मिनट में २,००० चक्कर करते हैं! नहीं मालूम इसकी परीक्षा हुई या नहीं; और हुई तो क्या फल हुआ।

८ अगस्त, १९०३, को अमेरिका के वर्जीनिया प्रान्त के वाइडवाटर नगर में अध्यापक लैङ्गली की पवन-नौका की परीक्षा हुई। नहीं कह सकते कि यह वही नौका है जिसके बनाने में अध्यापक ब्यल और लैङ्गली बहुत वर्षों से लगे थे; अथवा कोई और है, जिसे अकेले लैङ्गली ही ने बनाया है। इस नौका का एक छोटा सा नमूना एक कल से आकाश में छोड़ दिया गया। बस, छोड़ते ही वह बड़े वेग से उड़ा। पहले वह कुछ देर तक सीधा आकाश में चला गया; फिर उसके पर ज़रा फरफराये और एक तरफ़ झुक गये। ५०० गज़ तक वह नमूना उड़ा और उड़कर एक नदी में जा गिरा। इस जाँच के समय अध्यापक लैङ्गली उपस्थित न थे; परन्तु उनके सहकारी मैनले साहब उपस्थित थे। उन्होंने कहा कि जाँच का फल बुरा नहीं हुआ। उसमें पूरी पूरी सफलता हुई समझनी चाहिये। नौका में उड़ान करने की शक्ति यथेच्छ थी; और वायु में उसका तुल्यगुरुत्व भी पूरा था। नदी में गिरने से इसे विशेष हानि नहीं हुई। मैनले साहब ने दर्शकों से यह भी कहा कि वे इस कल को पानी से निकाल कर उसी दिन दूसरी बार उड़ा सकते हैं। यह नमूने की नौका १५ फुट लम्बी है; और लगभग इतनी ही चौड़ी भी है। लोहे की पतली पतली छड़ों की जाली से यह बनाई गई है। ६ फुट लम्बे और ४ फुट चौड़े चार पर इसमें हैं; वे रोग़नदार रेशम के बने हुए हैं। इसके बीच में दो घोड़े का बल रखनेवाला मोटर (चलानेवाला पेंच) है। उसीसे इस व्योम-विहारिणी कल को गति प्राप्त होती है।

यह अमेरिका की बात हुई। अब योरप की बातें सुनिये। स्पेन्सर साहब एक प्रसिद्ध विज्ञानी और ग़ुब्बारेबाज़ हैं। सितम्बर १९०३ में हमने सुना कि ये अपनी पवन नौका में बैठकर सेण्ट पाल्स कैथेड्रल की परिक्रमा करनेवाले थे। इस परिक्रमा का फल हमारे पढ़ने में नहीं आया। स्पेन्सर साहब कहते हैं, उनकी कल सर्वथा अकाश में उड़ने योग्य है। उसकी बनावट बहुत सादी है। उसकी उड़ान-शक्ति बहुत विलक्षण है। इस कल के मोटर में ३०,००० घन फुट गैस भरी जा सकती है। मोटर के उस भाग का व्यास जिसमें गैस भरी जाती है, २४ फुट और उसकी लम्बाई ९३ फुट है। इसमें एक छोटी सी गाड़ी रहती है जिसमें बैठकर स्पेन्सर साहब

मोटर को हाँकते हैं। इस नौका को वे जिस ओर चाहें ले जा सकते हैं। वे कहते हैं कि उनकी नौका बड़े काम की चीज़ है; और उसकी सिद्धता और उपयोगिता में कोई सन्देह नहीं है। उससे सभी के काम निकल सकते हैं। उसमें बैठकर सेनानायक सेना-सम्बन्धी कठिन से कठिन काम कर सकेंगे; विज्ञानी उत्तरी ध्रुव को जा सकेंगे; और शिकारी अफ़रीक़ा के अगम्य जङ्गलों में शिकार कर सकेंगे!

अब डाक्टर बर्टन की विचित्रता का वृत्तान्त सुनिये। वे एक वायु-पोत बना रहे हैं। वे हवा में चलनेवाली नाव नहीं, बना रहे, कल नहीं बना रहे, किन्तु एक पूरा पूरा जहाज़ बना रहे हैं! वे कहते हैं कि उनके जहाज़ के सामने स्पेन्सर साहब की नौका कोई चीज़ नहीं—एक डोंगी मात्र है। वे उसे ग़ुब्बारे ही के नियमों के अनुसार बनी हुई बतलाते हैं। परन्तु अपनी कल की वे अधिक प्रशंसा करते हैं; और कहते हैं कि वह स्वतन्त्रता से आकाश में यथेच्छ आवागमन कर सकेगी। इस पवन-पोत की लम्बाई १७० फ़ुट है; इसका व्यास ४० फ़ुट है; और इसका भीतरी भाग २३,०००० वर्ग फ़ुट है! डाक्टर साहब कहते हैं कि जिस समय इस पोत की परीक्षा होगी, उस समय सात आदमी इस पर बैठ सकेंगे। वे इसे यथेच्छ उतार चढ़ा सकेंगे; और जब जिस ओर चाहेंगे ले जायंगे। डाक्टर बार्टन के पवन-पोत की सफलता का गवर्नमेण्ट को भी पूरा विश्वास होगया था। सुनते हैं ग्रेट-ब्रिटेन के युद्ध-विभाग ने डाक्टर साहब के इस जहाज़ को ६०,०००० रुपए में मोल लेने का वादा किया था। १ अगस्ट, १९०३, तक इस जहाज़ को बनाकर दे देने के लिए डाक्टर साहब ने प्रतिज्ञा की थी। यह प्रतिज्ञा उनसे पूरी नहीं हो सकी। इसलिए युद्ध-विभाग ने प्रतिज्ञा भङ्ग के कारण उसके लेने का ठेका तोड़ दिया। डाक्टर वार्टन कहते हैं कि तैयार हो जाने पर यदि ब्रिटिश-युद्ध-विभाग उनके पवन-पोत को न लेगा तो वे उसे और किसी योरपीय राज्य को बेच देंगे। ग्रेटब्रिटेन के वार आफ़िस (युद्ध-सम्बन्धी प्रधान दफ़्तर) के द्वारा इस व्योम-विहारी जहाज़ को मोल लिए जाने की बात से यह सूचित होता है कि यह जहाज़ सचमुचही उड़ सकेगा।

कुछ भी हो,—जो कुछ, इस विषय में, ऊपर कहा गया उससे जान पड़ता है कि वह समय बहुत निकट है जब मनुष्य पक्षियों के समान आकाश में उड़ते हुए दिखाई देंगे। एवमस्तु! विज्ञान में सब शक्ति है।

यहां तक जो कुछ हमने लिखा, उसकी समाप्ति नवम्बर १९०३ में हुई थी। तबसे यह लेख ऐसा ही पड़ा रहा; सरस्वती में स्थान की कमी के कारण यह छप नहीं सका। गत वर्ष अमेरिका के सेण्टलुई नामक शहर में एक बहुत बड़ी प्रदर्शनी हुई। उसमें अनेक पवन-नौकाओं ने अपनी अपनी करामातें दिखलाईं। इस सम्बन्ध के बहुत से काग़ज़ात हमने इकट्ठा किये थे। पर झांसी से कानपुर को जो हमने अपनी पुस्तकें इत्यादि, और असबाब के साथ, भेजीं, उनमें वे काग़ज़ कहीं खो गये। इससे हम नहीं कह सकते कि इस प्रदर्शनी में किसकी नौका सर्वोत्तम निकली। इसमें दस बारह फ्लाइंग् मैशीन, अर्थात् उड़नेवाली कलों, की दौड़ का तमाशा हुआ था। सबसे अच्छी कल के बनानेवाले को तीन लाख रुपया इनाम मिलने की घोषणा थी। बहुत सम्भव है, अमेरिका के राइट साहब को यह इनाम मिला होगा। आप बहुत बड़े व्योम-विहारी हैं। आपकी प्रशंसा में कई लेख हमने अंगरेज़ी में पढ़े हैं। हमें याद है कि प्रदर्शनी होने के पहले इन्होंने एक बार अपनी हवाई नाव को तीन मील उड़ाकर देखनेवालों को चकित कर दिया था।

योरप और अमेरिका के सामयिक पत्रों में आज तक जो लेख प्रकाशित हुए हैं, उनसे यह अनुमान होता है, कि कुछ दिनों में लोग निडर होकर आकाश में उड़ने लगेंगे। कोई सभ्य देश ऐसा नहीं है जहां के विद्वान् इस समय इस आकाश-